ॐ

जैनधर्म की उदारता

(परिवर्द्धित संस्करण)

लेखक—

पण्डित परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ

[चर्चासागर समीक्षा, दानविचार समीक्षा, परमेष्ठि पद्यावली, विजातीय विवाह मीमांसा, चारुदत्त चरित्र, दस्साओं का पूजाधिकार आदि के लेखक और सम्पादक 'वीर']

प्रकाशक—

ला० जौहरीमल जैन सर्राफ

दरीबा कलां, देहली।

द्वितीयवार	सन् १९३६	मूल्य
१०००	वीर निर्वाण संवत् २४६२	=)॥

गयादत्त प्रेस, बाग दिवार देहली में छपा।

हमारे अन्तिम पूज्य तीर्थंकर श्री महावीर भगवानके जीव ने सिंह पर्याय से उन्नति करते करते तीर्थंकर पद पाया है। और परमात्मा बने हैं। जिस समय इनका जीव सिंह पर्याय में था, उस समय की हिंसक क्रियाओं के विचार मात्र से ही घृणा होती है परन्तु जैनधर्म के प्रताप से वह सिंह का जीव शुद्ध होते २ भगवान् महावीर बन गया। बस, यह है जैनधर्म की उदारता और महानता!

आज इस विशाल जैनधर्म को इसके अथधश्रद्धानुयायी एवं ठेकेदारों ने संकुचित धर्म बना रक्खा है। वे नहीं चाहते कि दूसरा व्यक्ति इससे लाभ ले सके। यह उन लोगों की भूल कहें अज्ञानता कहो, धर्मान्धता कहो, क्षुद्रता कहो, कृपणता कहो, कायरता कहो, या कहो धर्म द्रोह की संकुचित मनोवृत्ति-ग्रस्त बुद्धि कहो। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उनके इन संकुचित विचारों ने यहां तक जोर पकड़ा है कि वे अपने धर्मबन्धुओं को धर्मपालन से वंचित करने पर तुले बैठे हैं।

आज जैनसमाज में दस्सा भाइयों के देव पूजन का आंदोलन इन्हीं महानुभावों की कृपा दृष्टि से उठा हुआ है।

जैनधर्म विशाल धर्म है, संसार व्यापी धर्म है, प्राणी मात्र का धर्म है और सब के लिये है। किन्तु धर्म की विशालता या उदारता किसी हेतु से न छुप सकी। इस महानता का प्रकाश तो संसार भर में व्याप्त रहा है और अनेकान्त स्याद्वाद की सुगन्धी चारों ओर फैल रही है।

हमारे धर्मबन्धु श्री० प० परमेष्ठीदासजी सूरत ने जैनधर्म प्रभावनार्थ 'जैनधर्म की उदारता' नामक पुस्तक लिखा है। इस

शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि जैन धर्म पापियों, पतितो और सभी प्राणियों का उद्धार करने वाला है। हमने इस पुस्तक को कई बार पढ़ा। हमारी समझ मे तो लेखक भाई ने जैन धर्मी होते हुये इस "जैनधर्म की उदारता" पुस्तक को लिखकर अपनी मानसिक उदारता का परिचय दिया है अन्यथा अन्य जैन विद्वानों के संकुचित और कलुषित विचारो ने ऐसे प्रभावशाली विषय पर आज तक भी लेखनी नहीं उठाई। हम आशा करते है कि जहा यह पुस्तक अजैनो को जैन धर्म की उदारता बताकर यह भी दिखलायगी कि प्रत्येक मनुष्य जैनधर्म की शरण आसक्ता है वहा जैन धर्म के उन अन्ध श्रद्धालुओं को जो कि जैन धर्म को अपनी घरेलू सम्पत्ति समझे बैठे है, उदारता का पाठ भी पढ़ायगी।

हम लेखक भाई से सानुरोध निवेदन करते है कि आपकी उदारता इस एक छोटीसी पुस्तिका के लिख देने से ही समाप्त नहीं हो जानी चाहिये। बल्कि इस विषयपर तो आपको लिखते ही रहने की आवश्यकता है। इसके लिये जितना भी परिश्रम आप करें वह थोड़ा है। जब तक हमारे जैन बंधु जैनधर्म की उदारता को भले प्रकार न समझ जाय तबतक लेखनी को विश्राम देना उचित नहीं है। हमारी हार्दिक भावना है कि आपका किया हुआ परिश्रम सफल हो और जैनधर्म की उदारता से सभी मनुष्य लाभ उठावें।

ज्योतिप्रसाद जैन,

भू० सपादक जैन प्रदीप 'प्रेमभवन'– देवबन्द।

नम्र निवेदन

(प्रथमावृत्ति)

जहा उदारता है, प्रेम है, और समभाव है, वहीं धर्म का [वा]स है। जगत को आज ऐसे ही उदार धर्मकी आवश्यकता है। ईसाइयो के धर्मप्रचार को देखकर ईर्षा करते है, आर्य [स]माजियों की कार्यकुशलता पर आश्चर्य करते है और बौद्ध, ईशु [मसी]ह, दयानन्द सरस्वती आदिके नामोल्लेख तथा भगवान महावीर [का] नाम न देखकर दुखी हो जाते हैं। इसका कारण यही है कि उन धर्मानुयाइयों ने अपने धर्म की उदारता बताकर जनता [को] अपनी ओर आकर्षित कर लिया है और हम अपने जैनधर्म [की] उदारता को दबाते रहे कुचलते रहे और उसका गला घोंटते [रहे]। तब बताइये कि हमारे धर्मको कौन जान सकता है? भगवान [मह]ावीर स्वामी को कौन पहिचान सकता है और उदार जैनधर्मका [प्रच]ार कैसे हो सकता है?

इस छोटी सी पुस्तक में यह बताने का प्रयत्न किया गया है [कि] 'जैनधर्म की उदारता' जगत के प्रत्येक प्राणी को प्रत्येक दशा [में] अपना सकती है और उसका उद्धार कर सकती है। आशा है [कि] पाठकगण इसे आद्योपान्त पढ कर अपने कर्तव्य को पहि[चा]नेंगे।

[चं]दावाड़ी सूरत।
[?]-२-३४

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

नम्र निवेदन
(द्वितीयावृत्ति)

एक वर्ष के भीतर ही भीतर जैनधर्म की उदारताकी प्रथमावृत्ति प्राय समाप्त हो चुकी थी । और अब द्वितीयावृत्ति आपके सामने है । जैन समाज ने इस पुस्तक को खूब अपनाया है । और गण्य मान्य अनेक आचार्य, मुनियों त्यागियों और विद्वानों ने इस पर अपनी शुभ सम्मतियां भी प्रदान की हैं । (उनमें से कुछ पुस्तक के अन्त में प्रगट की गई हैं) यही पुस्तक की सफलता का प्रमाण है ।

सुधारप्रेमी प्रकाशक जी महोदय मुझे करीब ६ माह से प्रेरित कर रहे हैं कि मैं इस पुस्तक का संशोधन करके द्वितीय बार छपाने के लिये उनके पास भेज दूं और उदारता का 'द्वितीयभाग' भी जल्दी तैयार कर दूं । किन्तु मैं उनकी आज्ञा का जल्दी पालन नहीं कर सका । अब आज उदारता की द्वितीयावृत्ति तैयार हो रही है । किन्तु द्वितीय भाग तो मैंने अभी तक प्रारम्भ भी नहीं कर पाया है । हां, इसके अन्त में 'परिशिष्ट' भाग लगाया है उसमें कुछ विशेष प्रमाण और भी जानने को मिलेंगे । 'परिशिष्ट' भाग में विशाल जैनसंघ, संक्षिप्त जैनइतिहास, वीर और जैन सत्यप्रकाश आदि से सहायता ली गई है । अतः मैं उनके लेखकों का आभारी हूं । इसके बाद समय मिलते ही या तो मैं उदारता का द्वि भाग लिखूंगा या एक ऐसा 'कथा संग्रह' तैयार कर रहा हूं उदारता पूर्ण कथायें देखने को मिलेंगी ।

'जैनधर्म की उदारता' का गुजराती भाषा में भी हुआ है और उसे 'दि० जैन युवक संघ सूरत' ने तथा के एक सज्जन ने प्रगट किया है । तथा इसका मराठी श्रीधर दादा धानते सांगली प्रगट कर रहे हैं । इस प्रकार का अच्छा प्रचार हुआ है ।

जो रूढ़ि के गुलाम हैं, जो लकीर के फकीर हैं और जि

सत्य के दर्शन नहीं हो सके हैं, उनकी ओर से ऐसी पुस्तक का विरोध होना भी स्वाभाविक था, किन्तु आश्चर्य है कि इसका विषय विरोध करनेकी किसी की हिम्मत नहीं हुई। यह गौरव मुझे अपनी कृति पर नहीं, किन्तु जैनधर्म के उदारता पूर्ण उन प्रमाणों पर है, जो इस पुस्तक में दिये हैं और जो सर्वथा अखंडनीय हैं।

हां, उदारता के खण्डन करने का कुछ प्रयास श्री० प० विद्यानन्दजी शर्मा ने अवश्य किया था। किन्तु उनकी लेख माला इतनी अव्यवस्थित, अप्रासंगिक एवं प्राणहीन रही कि वह २-३ बार में ही बन्द हो गई। शर्मा जी तो तीन माहमें उदारता के किसी प्रकरणके किसी अंश पर कभी कभी २-४ कालम जैन गजट में लिख डालते थे और फिर चुप्पी साध लेते थे। इस प्रकार उन्हें करीब ६ माह हो चुके होंगे। किन्तु वे अभी तक न तो इस क्रम में सफलता पा सके हैं और न धारावाही खण्डन करने के लिये उनके पास सामग्री ही मालूम होती है। मैं इस प्रतीक्षा में था कि वे जरा ढंग से यदि खण्डन पूरा कर देते तो मैं उनका पूर्ण समाधान द्वितीयावृत्ति में कर देता। किन्तु खेद है कि वे ऐसा करनेमें असमर्थ रहे हैं। इस लिये मैंभी जैनमित्र में उनका थोड़ासा उत्तर देकर रहगया। अस्तु

उदारचेता सज्जनो! जैन धर्म की उदारता तो ऐसी है कि यदि उसे निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो अन्तःकरण साक्षी देगा कि जैनधर्म जैसी उदारता अन्यत्र नहीं है। यह धर्म घोर से घोर पापियों को पवित्र करता है, नीच से नीच मानव को उच्च बना सकता है और पतित से पतित प्राणियों को शुद्ध करके सबको समान बना सकता है। इसकी उदारता को देखिये और उसका प्रचार करिये। इसका उपयोग करिये तथा जन सेवा करके विचार भूले भटके भाइयोंको इस मार्ग पर लगाइये। यही मनुष्य भवकी सफलता है।

चन्दावाडी-सूरत
१२-१२-३४

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ
सम्पादक—'वीर'

उपयोगी एव सग्रहणीय पुस्तकें।

१ शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण — स्व० पं० जुगलकिशोरजी,)॥
२ विवाह क्षेत्र प्रकाश
३ सूर्य प्रकाश समीक्षा — " " ।≠)
४ मेरी भावना — " ।=)
५ जैन जाति सुदशा प्रवर्तक — " ")॥
६ मंगलादेवी — " बा० बाबू सूरजभानजी, =)
७ कुवारों की दुर्दशा — " =)
८ गृहस्थधर्म — " " " =)
९ दस्सा पोरा बदमाश — " ")॥
१० अबलाओं के आँसू — अयोध्याप्रसादजी गोयलीय =)
११ निरयसाधना — " १)
१२ संसार दुःख दर्पण — जैन कवि ज्योतिप्रसादजी,)॥
१३ शारदा स्तवन — ")॥
१४ हिन्दी भक्तामर — " कल्याणकुमारजी, 'शशि')॥
१५ प्रार्थना स्तोत्र —)॥
१६ त्याग मीमांसा — जैन विद्यार्थियों के हितार्थ,)।
१७ सुधार संगीत माला — ब्र० पं० दीपचन्दजी वर्णी =)
१८ संकट हरन — " भरामलजी मुशरफ)॥
बा० दिगम्बरप्रसाद वकील इद)॥

नोट— एक रुपये से कम की पुस्तकें मगाने वालों को पोस्टेज सहित टिकटें भेजना चाहिये।

मिलने का पता —

जौहरीमल जैन सर्राफ,
दरीबा कलां—देहली।

लोक मे तीन भावनायें कार्य करती मिलती हैं। उनके कारण प्रत्येक प्राणी (१) आत्मस्वातन्त्र्य (२) आत्म महत्व और (३) आत्मसुख की अकांक्षा रखता है। निस्सन्देह सब को स्वाधीनता प्रिय है, सब ही महत्वशाली बनना चाहते हैं और सब ही सुख शान्ति चाहते हैं। मनुष्येतर प्राणी अपनी अबोधता के कारण इन का स्पष्ट प्रदर्शन भले नहीं कर पाते, पर वह जैसी परिस्थिति मे होते हैं वैसे मे ही मग्न रह कर दिन पूरे कर डालते हैं। किन्तु मनुष्यों मे उनसे विशेषता है। उनमे मनन करने की शक्ति विद्यमान है। अच्छे बुरे को अच्छे से ढङ्ग पर जानना वह जानते हैं। विवेक मनुष्य का मुख्य लक्षण है। इस विवेक ने मनुष्य के लिये 'धर्म' का विधान किया है। उसका स्वभाव—उसके लिये सब कुछ अच्छा ही अच्छा धर्म है। उसका धर्म उसे आत्मस्वातन्त्र्य, आत्म महत्व और आत्मसुख नसीब कराता है।

किन्तु संसार में तो अनेक मत मतान्तर फैल रहे हैं और सब ही अपने को श्रेष्ठतम घोषित करने में गर्व करते हैं। अब भला कोई किस को सत्य माने? किन्तु उनमे 'धर्म' का अंश वस्तुत कितना है, यह उनके उदार रूप से जाना जा सकता है। यदि वे प्राणीमात्र को समान रूप से धर्मसिद्धि अथवा आत्मसिद्धि कराते हैं—किसी के लिए विरोध उपस्थित नहीं करते तो उन को यथार्थ धर्म मानना ठीक है। परन्तु बात दर असल यूं नहीं है।

इस्लाम यदि मुस्लिम जगतमे भ्रातृभाव को सिरजता है तो मुस्लिम बाह्य-जगत उसके निकट 'काफिर'—उपेक्षणीय है। पशु जगत के लिए उसमें ठौर नहीं—पशुओं को वह अपनी आसाइश की वस्तु समझता है। तब आप के इस्लाम वाले 'धर्म' का नाता किस तरह कर सकते हैं, यह पाठक स्वयं विचारें।

वैदिक धर्म इस्लाम से भी पिछड़ा मिलता है। सारे वैदिक-धर्मानुयायी उसमें एक नहीं हैं। वर्णाश्रम धर्म—रक्त शुद्धि की भ्रान्तिमय धारणा पर एक वेद भगवान के उपासकों को वे टुकड़ों टुकड़ों में बांट देते हैं। शूद्रों और स्त्रियों के लिए वेद पाठ करना भी वर्जित कर दिया जाता है। जब मनुष्यों के प्रति यह अनुदारता है, तब भला कहिये पशु-पक्षियों की कथा क्या पूछ होगी? शायद पाठकगण ईसाई मत को 'धर्म' के अति निकट समझें। किन्तु आज का ईसाई जगत अपने नैतिक व्यवहार से अपने को 'धर्म' से बहुत दूर प्रमाणित करता है। अमरिका में काले-गोरे का भेद, यूरोप में एक दूसरे को [illegible] नाश की कुनीति ईसाइयों को विवेक से अति दूर भटका सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

सचमुच यथार्थ धर्म प्राणी मात्र को समान रूप में सुख शान्ति प्रदान करता है—उसमें भेद भाव हो ही नहीं सकता। मनुष्य मनुष्य का भेद अप्राकृतिक है। एक देश और एक जाति के लोग भी काले-गोरे-पीत-ऊँच-नीच-विद्वान-मूढ-निर्बल-सबल—सब ही तरह के मिलते हैं। एक ही माँ की कोख से जन्मे दो पुत्र परस्पर विरुद्ध प्रकृति और आचरण को लिए हुए दिखते हैं। इस स्थिति में जन्मगत अन्तर उसका नहीं माना जा सकता। हम कह चुके हैं कि धर्म जीव मात्र का आत्मस्वभाव (अपना २ धर्म) है।

इस लिये धर्म में यह अनुदारता हो ही नहीं सकती कि वह किन्हीं खास प्राणियों से राग करके उन्हें तो अपना अकषायी बनाकर उच्च पद प्रदान करदे और किन्हीं को द्वेष भाव में बहाकर आत्मोत्थान करने से ही वञ्चित रक्खे। सच्चा धर्म वह होगा जिसमें जीवमात्र के आत्मोत्थान के लिये स्थान हो। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निस्सन्देह जैन धर्म एक परमोदार सत्य धर्म है—वह जीवमात्र का कल्याणकर्ता है। धर्म का यथार्थ लक्षण उसमें घटित होता है।

विद्वान लेखक ने जैन शास्त्रों के अगणित प्रमाणों द्वारा अपने विषय को स्पष्ट कर दिया है। ज्ञानी जीवों को उनके इस सत्प्रयास से लाभ उठाकर अपने मिथ्यात्व जाति मद की मदान्धता को नष्ट कर डालना चाहिये। और जगत को अपने वर्ताव से यह बता देना चाहिये कि जैन धर्म वस्तुतः सत्य धर्म है और इसके द्वारा प्रत्येक प्राणी अपनी जीवन आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है। जैन धर्म हर स्थिति के प्राणी को आत्मस्वातन्त्र्य, आत्ममहत्व और आत्मसुख प्रदान करता है। जन्मगत श्रेष्ठता मानकर मनुष्य के आत्मोत्थान को रोक डालने का पाप उसमें नहीं है। मित्रवर प० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ का ज्ञानोद्योग का यह प्रयास अभिनन्दनीय है। इसका प्रकाश मनुष्य हृदय को आलोकित कर रहा है। इति शम्।

कामताप्रसाद जैन,
एम आर ए एस (लन्दन)
सम्पादक 'वीर' अलीगञ्ज।

धन्यवाद !

श्रीमान् दानवीर, जैन समाज भूषण, सेठ ज्वालाप्रसादजी जौहरी महेन्द्रगढ़ बड़े ही उदार चित्त और सरल परिणामी हैं। आप श्वे० स्थानकवासी सम्प्रदाय के स्तम्भ होते हुये भी समस्त जैन समाज के हितैषी हैं। आपने लगभग एक लाख रुपया जैन सूत्रों के प्रचार में लगा दिया है और अब भी लगाते रहते हैं आप जो भी शास्त्र छपाते हैं वे सब अमूल्य वितीर्ण करते हैं।

आपने श्री जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला की नींव रक्खी और हजारों रुपये की लागत से साहित्य भवन, सामायिक भवन, फैमली क्वार्टर्स आदि इमारतें बनवाकर गुरुकुल को अर्पण कीं, और इसके प्रेम में इतने मुग्ध हुये कि इसके पास ही अपनी जमीन खरीद कर "माणक भवन" (अपने बड़े सुपुत्र चि० माणकचन्द के नाम पर) नाम की विशाल कोठी, सुन्दर बगीचा आदि बनवाकर प्रति वर्ष कई महीना यहां रहने लगे और गुरुकुल के कार्य में सहयोग देने लगे।

आजकल आप गुरुकुल कमेटी के अध्यक्ष हैं आपने इस विचार से कि गुरुकुल में इसके अधीन अपने बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए दाखिल करावें, अपने प्रियपुत्र चि० माणकचन्द को ता० [illegible] अक्तूबर सन् १९[illegible] रविवार के दिन दाखिल कर दिया है। अब आप का प्रियपुत्र गुरुकुल के अन्य ब्रह्मचारियों जैसा बन रहा है। मेरी हार्दिक भावना है कि धर्मोपकारी सेठजी के धर्म प्रेम की वृद्धि हो और चि० माणकचन्द जैनधर्म की उच्च शिक्षा प्राप्त करके जैनधर्म का प्रचार और जैनसमाज का सुधार करें। श्रीमान सेठजी ने मेरी हार्दिक [illegible] पर चि० माणकचन्द के गुरुकुल प्रवेश की खुशी में इस 'जैन धर्म की [illegible]' के प्रचारार्थ १०८) प्रदान किये हैं अतः धन्यवाद!

—प्रकाशक

चित्र माणक चन्द जैन (ब्रह्मचारी श्री जैनेन्द्र गुरुकुल पचकुला) सुपुत्र श्रीमान् दानवीर जैन समाज भूषण सेठ ज्वाला प्रसाद जी जैन जौहरी महेन्द्रगढ (पटियाला स्टेट)

परमेष्ठिने नम ॥

जैनधर्म की उदारता ।

पापियों का उद्धार ।

जो प्राणियों का उद्धारक हो उसे धर्म कहते हैं। इसी लिये धर्म का व्यापक,सार या उदार होना आवश्यक है। जहां सकुचित दृष्टि है, स्वपर का पक्षपात है, शारीरिक अच्छाई बुराई के कारण आन्तरिक नीच ऊँचपने का भेद भाव है वहां धर्म नहीं हो सकता धर्म आत्मिक होता है शारीरिक नहीं। शरीर की दृष्टि से तो कोई भी मानव पवित्र नहीं है। शरीर सभी अपवित्र हैं। इसलिये आत्मा के साथ धर्म का सबध मानना ही विवेक है। लोग जिस शरीर को ऊँचा समझते हैं उस शरीर वाले कुगति में भी गये हैं और जिनके शरीर नीच समझे जाते हैं वे भी सुगति को प्राप्त हुये हैं। इसलिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि धर्म चमड़े में नहीं किन्तु आत्मा में होता है। इसी लिये जैन धर्म इस बात को स्पष्टतया प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक प्राणी अपनी सुकृति के अनुसार उच्च पद प्राप्त कर सकता है। जैन धर्म का शरण लेने के लिये उसका द्वार सबके लिये सर्वदा खुला है। इस बात को रविषेणाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि—

> अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् ।
> जिनशासनमेतद्धि परमं शरणं मतम् ॥

अर्थात्—जो अनाथ हैं, बान्धव विहीन हैं, दरिद्री हैं, अत्यन्त दुखी हैं उनके लिए जैन धर्म परम शरणभूत है।

यहां पर कल्पित जातियों या वर्णों का उल्लेख न करके साधारण को जैनधर्म ही एक शरणभूत बतलाया गया है। जैनधर्म में मनुष्यों की तो बात क्या पशु पक्षी या प्राणी मात्र के कल्याण का भी विचार किया गया है।

आत्मा का सच्चा हितैषी, जगत के प्राणियों को पार लगाने वाला, महा मिथ्यात्व के गड्ढे से निकाल कर सन्मार्ग पर आरूढ़ करा देने वाला और प्राणीमात्र को प्रेम का पाठ पढ़ाने वाला सर्वज्ञ कथित एक जैनधर्म है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक धर्मावलम्बी की अपने अपने धर्म के विषय में यही धारणा रहती है, किन्तु उसको सत्य सिद्ध कर दिखाना कठिन है। जैनधर्म सिखाता है कि अस्पृश्यता को छोड़ कर मनुष्य से मनुष्यता का व्यवहार करो, प्राणी मात्र से मैत्री भाव रक्खो, और निरंतर परहित निरत रहो। मनुष्य ही नहीं पशुओं तक के कल्याण का उपाय सोचो और उन्हें घोर दुःख दावानल से निकालो।

धर्म शास्त्र इसके ज्वलंत प्रमाण हैं कि जैनाचार्यों ने हाथी, सिंह, शृगाल, शूकर, बन्दर, नौला, आदि प्राणियों को भी धर्मोपदेश देकर उनका कल्याण किया था (देखो आदिपुराण पर्व १० श्लोक १४६) इसी लिये महात्माओं को अकारणबन्धु कह कर पुकारा गया है। एक सच्चे जैन का कर्तव्य है कि वह महा दुराचारी को भी धर्मोपदेश देकर उसका कल्याण करे। इस सम्बंध में अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं।

(१) जिनभक्त धनदत्त सेठ ने महा व्यसनी वश्यासक्त दृढ़सूर्य चोर को शूली पर चढ़ा हुआ देख कर उसे णमोकार मंत्र दिया था, जिससे वह पापात्मा पुण्यात्मा बनकर देव हुआ था। आदर्श सेठ की स्तुति करता हुआ कहता है कि—

अहो श्रेष्ठिन् ! जिनाधीशचरणार्चनकोविद ।
अहं चौरो महापापी दृढसूर्याभिधानकः ॥ ३१ ॥
त्वत्प्रसादेन भो स्वामिन् स्वर्गे सौधर्मसंज्ञके ।
दवो महर्द्धिको जातो ज्ञात्वा पूर्वभव सुधीः ॥ ३२ ॥
—आराधनाकथा न० २३ वीं ।

अर्थात—जिन चरण पूजन म चतुर हे श्रेष्ठी ! मैं दृढसूर्य नामक महापापी चोर आपके प्रमाद से सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ हूँ।

इस कथा से यह तात्पर्य निकलता है कि प्रत्येक जैन का कर्तव्य महापापी को भी पाप मार्ग से निकाल कर सन्मार्ग मे लगाने का है। जैनधर्म म यह शक्ति है कि वह महापापियो को शुद्ध करके शुभगति मे पहुँचा सकता है। यदि जैनधर्म की उदारता पर विचार किया जावे तो स्पष्ट मालूम होगा कि विश्वधर्म बनने की इसम योग्यता है या जैनधर्म ही विश्वधर्म हो सकता है। जैनाचार्यो ने ऐसे ऐसे पापियो को पुण्यात्मा बनाया है कि जिनकी कथायें सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे।

(२) अनगसेना नाम की वेश्या अपने वेश्या कर्म को छोडकर जैन दीक्षा ग्रहण करती है और जैनधर्म की आराधना करके स्वर्ग मे जाती है। (३) यशोधर मुनि महाराज ने मत्स्यभक्षी मृगसेन धीवर को णमोकार मन्त्र दिया और व्रत ग्रहण कराया, जिस से वह मर कर श्रेष्ठिकुल मे उत्पन्न हुआ (४) कपिल ब्राह्मणने गुरुदत्त मुनि को आग लगाकर जला डाला था, फिर भी वह पापी अपने पापो का पश्चात्ताप करके स्वयं मुनि होगया था। (५) आर्यिका ने एक मुनि से शील

फिर भी वह पुन शुद्ध होकर आर्यिका होगई थी और स्वर्ग गई। (६) राजा मधु ने अपने माण्डलिक राजा की स्त्री को अपने यहां बलात्कार से रख लिया था और उससे विषय भोग करता रहा, फिर भी वह दोनों मुनि दान देते थे और अंत में दोनों ही दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग में गये। (७) शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भु ने व्यभिचार किया, बाद में वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकान्ता नामक आर्यिका के पास गई और दीक्षा लेकर स्वर्ग को गई। (८) वेश्यालम्पटी अंजन चोर तो उसी भव से मोक्ष जाकर जैनियों का भगवान बन गया था। (९) मांसभक्षी मृगध्वज ने मुनिदीक्षा ली और वह भी कर्म काटकर परमात्मा बन गया। (१०) मनुष्यभक्षी सौदास राजा मुनि होकर उसी भव से मोक्ष गया। इत्यादि सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जैनधर्म पतित-पावन है। यह पापियोंको परमात्मा तक बना देने वाला है और सब से अधिक उदार है। (११) यमपाल चाण्डाल की कथा तो जैनधर्म की उदारता प्रगट करने को सूर्य के समान है। जिस चाण्डाल का काम लोगों को फांसी पर लटका कर प्राण नाश करना था वही अछूत कहा जाने वाला पापात्मा थोड़े से व्रत के कारण देवों द्वारा अभिषिक्त और पूज्य हो जाता है। यथा—

तदा तद्व्रतमाहात्म्यान्महाधर्मानुरागतः ।
सिंहासन समारोप्य देवाभिः शुभवारिभिः ॥ २६ ॥
[illegible] अभिषेकं कृत्वा [illegible] सुधीः ।
[illegible] पूजितः परमादरात् ॥ २७ ॥

अर्थात्—उस यमपाल चाण्डाल को व्रत के महात्म्य से तथा धर्मानुराग से देवों ने सिंहासन पर विराजमान करके उसका अच्छे जल से अभिषेक किया और अनेक वस्त्र तथा आभूषणों से सन्मान किया।

इतना ही नहीं किन्तु राजा ने भी उस चाण्डाल के प्रति नम्रीभूत हो कर उससे क्षमा याचना की थी तथा स्वयं भी उसकी पूजा की थी। यथा—

तं प्रभावं समालोक्य राजाद्यैः परया मुदा।
अभ्यर्चितः स मातंगो यमपालो गुणोज्वलः॥ २८॥

अर्थात्—उस चाण्डाल के व्रत प्रभाव को देख कर राजा तथा प्रजा ने बड़े ही हर्ष के साथ गुणों से समुज्वल उस यमपाल चाण्डाल की पूजा की थी।

देखिये यह कितनी आदर्श उदारता है। गुणों के सामने न तो हीन जाति का विचार हुआ और न उसकी अस्पृश्यता ही देखी गई। मात्र एक चाण्डाल के दृढव्रती होने के कारण ही उस का अभिषेक और पूजन तक किया गया। यह है जैनधर्म की सची उदारता का एक नमूना! इसी प्रकरण में जाति मद न करने की शिक्षा देते हुये स्पष्ट लिखा है कि—

चाण्डालोऽपि व्रतोपेतः पूजितः देवतादिभिः।
तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते॥ ३०॥

अर्थात्—व्रतों से युक्त चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा गया इस लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपनी जाति का गर्व नहीं करना चाहिये।

यहां पर ग्रन्थकार ने कैसा सुन्दर निराकरण किया गया है!

जैनाचार्यों ने नीच ऊँच का भेद मिटाकर, जाति पाति का पक्ष तोड़ कर और वर्ण भेद को महत्व न देकर स्पष्ट रूप से गुणों को ही कल्याणकारी बताया है। अमितगति आचार्य ने इसी बात को इन शब्दों में लिखा है कि—

> शीलवन्तो गता स्वर्गे नीचजातिभवा अपि।
> कुलीना नरकं प्राप्ता शीलसंयमनाशिनः॥

अर्थात्—जिन्हें नीच जाति में उत्पन्न हुवा कहा जाता है वे शील धर्मको धारण करके स्वर्ग गये हैं और जिनके लिये उच्च कुलीन होने का मद किया जाता है ऐसे दुराचारी मनुष्य नरक गये हैं।

इस प्रकार के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जितनी उदारता, जितना वात्सल्य और जितना अधिकार जैनधर्म ने ऊंच नीच सभी मनुष्यों को दिया है उतना अन्य धर्मों में नहीं हो सकता। जैन धर्म में ही यह विशेषता है कि प्रत्येक व्यक्ति नर से नारायण हो सकता है। मनुष्य की बात तो दूर रही मगर भगवान समन्तभद्र के कथनानुसार तो—

> "श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात्"

अर्थात् धर्म धारण करके कुत्ता भी देव हो सकता है और पाप के कारण देव भी कुत्ता हो जाता है।

उच्च और नीचों में समभाव।

इसी प्रकार जैनाचार्यों ने पद पद पर स्पष्ट उपदेश दिया है कि जिज्ञासु को धर्म मार्ग बतलाओ, उसे दुष्कर्म छोड़ने का दो और यदि वह सच्चे रास्ते पर आजावे तो उसके साथ व्यवहार करो। सच बात तो यह है कि ऊंचों को ऊंच

नहीं बनाया जाता, वह तो स्वय ऊँच है ही, मगर जो भ्रष्ट हैं, पदच्युत हैं पतित हैं, उन्हें जो उच्च पद पर स्थित करदे वही उदार एवं सच्चा धर्म है। यह खूबी इस पतित पावन जैनधर्म मे है। इस सबंध मे जैनाचार्यो ने कई स्थानो पर स्पष्ट विवेचन किया है पचाध्यायीकार ने स्थितिकरण अगका विवेचन करते हुये लिखा है कि—

सुस्थितीकरण नाम परेषा सदनुग्रहात ।
भ्रष्टाना स्वपदात्तत्र स्थापन तत्पदे पुनः ॥ ८०७ ॥

अर्थात्— निज पद से भ्रष्ट हुये लोगों को अनुग्रह पूर्वक उसी पद म पुन स्थित कर देना ही स्थितिकरण अग है।

इस से यह सिद्ध है कि चाहे जिस प्रकार से भ्रष्ट या पतित हुये व्यक्तिको पुन शुद्ध कर लेना चाहिये और उसे फिर से अपने उच्च पद पर स्थित कर देना चाहिये। यही धर्म का वास्तविक अग है। निर्विचिकित्सा अग का वर्णन करते हुये भी इसी प्रकार उदारतापूर्ण कथन किया गया है। यथा—

दुर्दवाद्दु.खिते पु सि तीव्रासाताघृणास्पदे ।
यन्नादयापर चेत. स्मृतो निर्विचिकित्सकः ॥५८२

अर्थात्—जोपुरुष दुर्दव के कारण दुखी है औरतीव्र असाता के कारण घृणा का स्थान बन गया है उसके प्रति अदयापूर्ण चित्त का न होना ही निर्विचिकित्सा है।

बड़े ही खेद का विषय है कि हम आज सम्यक्त्वके इस प्रधान अग को भूल गये हैं और अभिमान के वशीभूत होकर अपने को ही सर्व श्रेष्ठ समझते हैं। तथा दीन दरिद्री और दुखियों को नित्य ठुकरा कर जाति मद मे मत्त रहते हैं। ऐसे अभिमानियों का

मस्तक नीचा करने के लिये पचाध्यायीकार ने स्पष्ट लिखा है कि—

नैतत्तन्मनस्यज्ञानमस्म्यहं सम्पदां पदम् ।
नासावस्मत्समो दीनो वराको विपदां पदम् ॥५८४॥

अर्थात्—मन में इस प्रकार का अज्ञान नहीं होना चाहिये कि मैं तो श्रीमान् हूँ, बड़ा हूँ, अतः यह विपत्तियों का मारा दीन दरिद्री मेरे समान कैसे हो सकता है। प्रत्युत प्रत्येक दीन हीन व्यक्ति के प्रति समानता का व्यवहार रखना चाहिए। जो व्यक्ति जाति मद या धन मद से मत्त होकर अपने को बड़ा मानता है वह मूर्ख है, अज्ञानी है। लेकिन जिसे मनुष्य तो क्या प्राणीमात्र सदृश मालूम हो वही सम्यग्दृष्टि है, वही ज्ञानी है, वही साधु है, वही उच्च है, वही विद्वान है, वही विवेकी है और वही सच्चा पण्डित है। मनुष्यों की तो बात क्या किन्तु त्रस स्थावर प्राणीमात्र के प्रति सम भाव रखने का पचाध्यायीकार ने उपदेश दिया है। यथा—

प्रत्युत ज्ञानमेवैतत्तत्र कर्मविपाकजा ।
प्राणिनः सदृशाः सर्व त्रसस्थावरयोनयः ॥५८५॥

अर्थात्—दीन हीन प्राणियों के प्रति घृणा नहीं करना चाहिये प्रत्युत ऐसा विचार करना चाहिये कि कर्मों के मारे यह जीव त्रस और स्थावर योनि में उत्पन्न हुये हैं, लेकिन हैं सब समान ही।

तात्पर्य यह है कि ऊँच नीच का भेदभाव रखने वाले को महा अज्ञानी बताया है और प्राणीमात्र पर सम भाव रखने वाले को सम्यग्दृष्टि और सच्चा ज्ञानी कहा है। इन बातों पर हमें विचार करने की आवश्यकता है। जैनधर्म की उदारता को हमें अब कार्य रूप में परिणत करना चाहिये। एक सच्चे जैनी के हृदय में न तो जाति मद हो सकता है, न ऐश्वर्य का अभिमान हो सकता है और न पापी या पतितों के प्रति घृणा ही हो सकती है। प्रत्युत वह तो

उन्हें पवित्र बनाकर अपने आसन पर बिठायगा और जैनधर्म की उदारता को जगत में व्याप्त करने का प्रयत्न करेगा। खेद है कि भगवान महावीर स्वामी ने जिस वर्ण भेद और जाति मद को चकनाचूर करके धर्म का प्रकाश किया था, उन्हीं महावीर स्वामी के अनुयायी आज उसी जाति मद को पुष्ट कर रहे हैं।

जाति भेद का आधार आचरण पर है।

ढाई हजार वर्ष पूर्व जब लोग जाति मद में मत्त होकर मन माने अत्याचार कर रहे थे और मात्र ब्राह्मण ही अपने को धर्माधिकारी मान बैठे थे तब भगवान महावीर स्वामी ने अपने दिव्योपदेश द्वारा जाति मूढ़ता जनता में से निकाल दी थी और समस्त वर्णों व जातियों को धर्म धारण करने का समानाधिकारी घोषित किया था। यही कारण है कि स्व० लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने सच्चे हृदय से यह शब्द प्रगट किये थे कि—

"ब्राह्मणधर्म में एक त्रुटि यह थी कि चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को समानाधिकार प्राप्त नहीं थे। यज्ञ यागादिक कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थ। क्षत्रिय और वैश्यों को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। और शूद्र बिचारे तो वैसे बहुत विषयों में अभागे थे। जैनधर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।" इत्यादि।

इसमे कोई सन्देह नहीं जैनधर्म ने महान् अधम से अधम और पतित से पतित शूद्र कहलाने वाले मनुष्यों को उस समय अपनाया था जब कि ब्राह्मण जाति उनसे साथ पशु तुल्य ही नहीं किन्तु उससे भी अधम व्यवहार करती थी। जैनधर्म का दावा है कि घोर पापी से पापी या अधम नीच कहा जानेवाला व्यक्ति जैन धर्म की शरण लेकर निष्पाप और उच्च हो सकता है। यथा—

महापापप्रकर्त्ताऽपि प्राणी श्रीजैनधर्मत'।
भवेत् त्रैलोक्यसम्पूज्यो धर्मात्किं भो परं शुभम् ॥

अर्थात्—घोर पाप को करने वाला प्राणी भी जैन धर्म धारण करने से त्रैलोक्य पूज्य हो सकता है।

जैनधर्म की उदारता इसी बात से स्पष्ट है कि इसको मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नारकी सभी धारण करके अपना कल्याण कर सकते हैं। जैनधर्म पाप का विरोधी है पापी का नहीं। यदि वह पापी का भी विरोध करने लगे, उनसे घृणा करने लग जावे तो फिर कोई भी अधम पर्याय वाला उच्च पर्याय को नहीं पा सकेगा और शुभाशुभ कर्मों की तमाम व्यवस्था ही बिगड़ जायगी।

जैन शास्त्रों में धर्मधारण करने का ठेका अमुक वर्ण या जाति को नहीं दिया गया है किन्तु मन वचन काय से सभी प्राणी धर्म धारण करने के अधिकारी बताये गये हैं। यथा—

"मनोवाक्कायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः"

—श्री सोमदेवसूरि।

ऐसी ऐसा आज्ञायें, प्रमाण और उपदेश जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं, फिर भी संकुचित दृष्टि वाले जाति मद में मस्त होकर इन बातों की परवाह न करके अपने को ही सर्वोच्च समझ कर दूसरों के कल्याण में नरकाम्भ बाधा डाला करते हैं। ऐसे व्यक्ति जैन धर्म की उदारता को नष्ट करके स्वयं तो पाप बंध करते ही हैं साथ ही पतितों के उद्धार में अवरोधों की उन्नति में और पदच्युतों के उत्थान में बाधक होकर घोर अत्याचार करते हैं।

उनको मात्र भय इतना ही रहता है कि यदि नीच कहलाने वाला व्यक्ति भी जैनधर्म धारण कर लेगा तो फिर हम में और उसमें क्या भेद रहेगा! मगर उन्हें इतना ज्ञान नहीं है कि भेद

होना ही चाहिये इसकी क्या जरूरत है? जिस जाति को आप नीच समझते हैं उसमें क्या सभी लोग पापी, अन्यायी, अत्याचारी या दुराचारी होते हैं? अथवा जिसे आप उच्च समझे बैठे हैं उस जाति में क्या सभी लोग धर्मात्मा और सदाचार के अवतार होते हैं? यदि ऐसा नहीं है तो फिर आपको किसी वर्ण को ऊंचा या नीच कहने का क्या अधिकार है?

हां, यदि भेद व्यवस्था करना ही हो तो जो दुराचारी है उसे नीच और जो सदाचारी है उसे उच्च कहना चाहिये। श्रीरविषेणाचार्य ने इसी बात को पद्मपुराण में इस प्रकार लिखा है कि—

चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणं।
सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धं भुवने गतम्॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या चाण्डालादिक का तमाम विभाग आचरण के भेद से ही लोक में प्रसिद्ध हुआ है। इसी बातका समर्थन और भी स्पष्ट शब्दों में आचार्य श्री अमितगति महाराज ने इस प्रकार किया है कि—

आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम्।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्विकी॥
गुणैः सपद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते॥

अर्थात्—शुभ और अशुभ आचरण के भेद से ही जातियों में भेद की कल्पना की गई है, लेकिन ब्राह्मणादिक जाति कोई कहीं पर निश्चित, वास्तविक या स्थाई नहीं है। कारण कि गुणों के होने से ही उच्च जाति होती है और गुणों के नाश होने से उस जाति का भी नाश होजाता है।

पाठको! इससे अधिक स्पष्ट, सुन्दर तथा उदार कथन और

क्या हो सकता है? अमितगति आचार्य ने उक्त पद्य में तो जातियों को कपूर की तरह उड़ा दिया है। तथा यह स्पष्ट घोषित किया है कि जातियां कल्पित हैं वास्तविक नहीं। उनका विभाग शुभ और अशुभ आचरण पर आधार रखता है न कि जन्म पर। तथा कोई भी जाति स्थायी नहीं है। यदि कोई गुणी है तो उसकी जाति उच्च है और यदि कोई दुर्गुणी है तो उसकी जाति नष्ट होकर नीच हो जाती है। इससे सिद्ध है कि नीच से नीच जाति में उत्पन्न हुआ व्यक्ति शुद्ध होकर जैन धर्म धारण कर सकता है और वह उतना ही पवित्र हो सकता है जितना कि जन्म से धर्म का ठेकेदार माने जाने वाला एक जैन होता है। प्रत्येक व्यक्ति जैनी बन कर आत्मकल्याण कर सकता है। जब कि अन्य धर्मों में जाति वर्ण या समूह विशेष का पक्षपात है तब जैनधर्म इससे बिलकुल ही अछूता है। यहां पर किसी जातिविशेष के प्रति राग द्वेष नहीं है, किन्तु मात्र आचरणपर ही दृष्टि रक्खीगई है। जो आज ऊंचा है वही अनार्यों के आचरण करने से नीच भी बन जाता है। यथा—

"अनार्यमाचरन् किंचिज्जायते नीचगोचरः"

—रविषेणाचार्य।

जैन समाज का कर्तव्य है कि वह इन आचार्य वाक्यों पर विचार करे, जैन धर्म की उदारता को समझे और दूसरों को निःसंकोच जैन धर्म में दीक्षित करके अपने समान बनाले। कोई भी व्यक्ति जब पतित पावन जैन धर्म को धारण करले तब उसको तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार देना चाहिये और उसे अपने भाई से कम नहीं समझना चाहिये। यथा—

विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।
जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बांधवोपमाः॥

अर्थात—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो आचरण के भेद से कल्पित किये गये हैं। किन्तु जब वे जैन धर्म धारण कर लेते हैं तब सभी को अपने भाई के समान ही समझना चाहिये।

इसीसे मालूम होगा कि जैनधर्म कितना उदार है और उसमें आते ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ किस प्रकार से प्रेम व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है। किन्तु जैनधर्म की इस महान् उदारता को जानते हुये भी जिनकी दुर्बुद्धि में जाति मद का विष भरा हुआ है उनसे क्या कहा जाय? अन्यथा जैन धर्म तो इतना उदार है कि कोइभी मनुष्य जैन होकर तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकारों को प्राप्त कर सकता है।

वर्ण परिवर्तन।

कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि जाति भलेही बदल जाय मगर वर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता है, किन्तु उनकी यह भूल है कारण कि वर्ण परिवर्तन हुये बिना वर्ण की उत्पत्ति एवं उसकी व्यवस्था भी नहीं हो सकती थी। जिस ब्राह्मण वर्ण को सर्वोच्च माना गया है उसकी उत्पत्ति पर तनिक विचार करिये तो मालूम होगा कि वह तीनों वर्णों के व्यक्तियों में से उत्पन्न हुआ है। आदिपुराण में लिखा है कि जब भरत राजा ने ब्राह्मण वर्ण स्थापित करने का विचार किया तब राजाओं को आज्ञा दी थी कि—

सदाचारैर्निजैरिष्टैरनुजीविभिरन्विताः।
अद्यास्मदुत्सवे यूयमायातेति पृथक् पृथक् ॥ पर्व ३८ ॥

अर्थात्—आप लोग अपने सदाचारी इष्ट मित्रों सहित तथा नौकर चाकरों को लेकर आज हमारे उत्सव में आओ। इस प्रकार भरत चक्रवर्ती राजा प्रजा और नौकर चाकरों को बुलाया था, कुछ

म क्षत्री वैश्य और शूद्र सभी वर्ण के लोग थे। उनमें से जो लोग हरे अंकुरों को मर्दन करते हुये महल में पहुंच गये उन्हें तो चक्रवर्ती ने निकाल दिया और जो लोग हरे घास को मर्दन न करके बाहर ही खड़े रहे या लौट कर वापिस जाने लगे उन्हें ब्राह्मण बना दिया। इस प्रकार तीन वर्णों में से विवेकी और दयालु लोगों को ब्राह्मण वर्ण में स्थापित किया गया।

अब यहां विचारणीय बात यह है कि जब शूद्रों में से भी ब्राह्मण बनाये गये, वैश्यों में से भी बनाये गये और क्षत्रियों में से भी ब्राह्मण तैयार किये गये तब वर्ण अपरिवर्तनीय कैसे होसकता है? दूसरी बात यह है कि तीन वर्णों में से छांट कर एक चौथा वर्ण तो पुरुषों का तैयार होगया, मगर उन नये ब्राह्मणों की स्त्रियां कैसे ब्राह्मण हुई होंगी? कारण कि वे तो महाराजा भरत द्वारा आमंत्रित की नहीं गई थीं क्योंकि उसमें तो राजा लोग और उनके नौकर चाकर आदि ही आये थे। उनमें सब पुरुष ही थे। यह बात इस कथन से और भी पुष्ट हो जाती है कि उन सब ब्राह्मणों को यज्ञोपवीत पहनाया गया था। यथा—

तेषां कृतानि चिन्हानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः।
उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशान्तकैः॥ पर्व ३८-२१॥

अर्थात्—पद्म नामक निधि से ब्रह्मसूत्र लेकर एक से ग्यारह तक (प्रतिमानुसार) उनके चिन्ह किये। अर्थात् उन्हें यज्ञोपवीत पहनाया।

यह बात तो सिद्ध है कि यज्ञोपवीत पुरुषों को ही पहनाया जाता है। तब उन ब्राह्मणों के लिये स्त्रियां कहां से आई होंगी? कहना होगा कि वही पूर्व की पत्नियां जो क्षत्रिय वैश्य या शूद्र होंगी ब्राह्मणी बनाली गई होंगी। तब उनका भी वर्ण परिवर्तित

होजाना निश्चत है। शास्त्रों में भी वर्ण लाभ करनेवाले को अपनी पूर्वपत्नी के साथ पुनर्विवाह करनेका विधान पाया जाता है यथा—

"पुनर्विवाहसंस्कारः पूर्वः सर्वोऽस्य संमतः"

आदिपुराण पर्व ३६ ६०॥

इतना ही नहीं किन्तु पर्व ३६ श्लोक ६१ से ७० तक के कथन से स्पष्ट मालूम होता है कि जैनी ब्राह्मणों को अन्य मिथ्यादृष्टियों के साथ विवाह सम्बंध करना पड़ता था, बाद में वह ब्राह्मण वर्ण में ही मिलजाते थे। इस प्रकार वर्णों का परिवर्तित होना स्वाभाविक सा होजाता है। अतः वर्ण कोई स्थाई वस्तु नहीं है यह बात सिद्ध हो जाती है। आदि पुराण में वर्ण परिवर्तन के विषय में अक्षत्रियों को क्षत्रिय होने बाबत इस प्रकार लिखा है कि—

"क्षत्रियाश्च वृत्तस्थाः क्षत्रिया एव दीक्षिताः"।

इस प्रकार वर्ण परिवर्तन की उदारता बतला कर जैनधर्म ने अपना मार्ग बहुत ही सरल एवं सर्व कल्याणकारी करदिया है। यदि इसी उदार एवं धार्मिक मार्ग का अवलम्बन किया जाय तो जैन समाज की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है और अनेक मनुष्य जैन बनकर अपना कल्याण कर सकते हैं। किसी वर्ण या जाति को स्थाई या गतानुगतिक मान लेना जैनधर्म की उदारता का खून करना है। यहां तो कुलाचार को छोड़नेसे कुल भी नष्ट हो जाता है यथा—

कुलावधिः कुलाचाररक्षणं स्यात् द्विजन्मनः।
तस्मिन्नसत्यसौ नष्टक्रियोऽन्यकुलतां व्रजेत् ॥१८१॥

—आदिपुराण पर्व ४०।

अर्थ—ब्राह्मण को अपने कुल की मर्यादा और कुल के

आचारों की रक्षा करना चाहिये। यदि कुलाचार विचारों की रक्षा नहीं की जाय तो वह व्यक्ति अपने कुल से नष्ट होकर दूसरे कुल वाला हो जायगा।

तात्पर्य यह है कि जाति, कुल, वर्ण आदि सब क्रियाओं पर निर्भर है। इनके बिगड़ने सुधरने पर इनका परिवर्तन हो जाता है।

गोत्र परिवर्तन।

एक तो इस बात का है कि आगम और शास्त्रों की दुहाई देने वाले जितने ही लोग वर्ण को तो अपरिवर्तनीय मानते ही हैं और साथ ही गोत्र की कल्पना को भी स्थाई एवं जन्मगत मानते हैं किन्तु जैन शास्त्रों ने वर्ण और गोत्र को परिवर्तन होने वाला बता कर गुणों की प्रतिष्ठा की है तथा अपनी उदारता का द्वार प्राणी मात्र के लिये खुला करदिया है। दूसरी बात यह है कि गोत्र कर्म किसी के अधिकारों में बाधक नहीं हो सकता। इस सम्बंध में यहां कुछ विशेष विचार करने की जरूरत है।

सिद्धान्त शास्त्रों में किसी कर्म प्रकृति का अन्य प्रकृति रूप होने को संक्रमण कहा है। उसके ५ भेद होते हैं—उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुण और सर्व संक्रमण। इनमें से नीच गोत्र के दो संक्रमण हो सकते हैं। यथा—

सत्तण्ह गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी।
संहदि संठाणदसं णीचा पुराणं थिरछक्कं च ॥ ४२२ ॥
बीसण्हं विज्झादं अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते॥४२३॥ कर्मकांड

असातावेदनीय, अशुभगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, नीच गोत्र अपर्याप्त, अस्थिरादि ६ इन २० प्रकृतियों के विध्यात और गुण संक्रमण होते हैं। अत

या माता के रूपमें सक्रमण (परिवर्तन) हो सकता है उसी प्रकार से नीच गोत्र का ऊँच गोत्र के रूप में भी परिवर्तन (सक्रमण) होना सिद्धात शास्त्र से सिद्ध है। अत किसी को जन्म से मरने तक नीचगोत्री ही मानना दयनीय अज्ञान है। हमारे सिद्धान्त शास्त्र पुकार २ कर कहते हैं कि कोई भी नीच से नीच या अधम से अधम व्यक्ति उच पद पर पहुच सकता है और वह पावन बन जाता है। यह बात तो सभी जानते हैं कि जो आज लोकदृष्टि मे नीच था वही कल लोकमान्य, प्रतिष्ठित एव महान होजाता है। भगवान अकलकदेव ने राजवार्तिक म उच नीच गोत्र की इस प्रकार व्याख्या की है—

यस्योदयात् लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम् ॥
गर्हितेष यत्कृत तन्नीचैर्गोत्रम् ॥
गर्हितेषु दरिद्राऽप्रतिज्ञातदुःखा कुलेषु यत्कृत प्राणिना जन्म तन्नीचैर्गोत्र प्रयेतव्यम् ॥

ऊँच नीच गोत्र की इस व्याख्या से मालम होता है कि जो लोकपूजित-प्रतिष्ठित कुलो मे जन्म लेते है वे उच्चगोत्री है और जो गर्हित अर्थात् दुखी दरिद्री कुल मे उत्पन्न होते है वे नीच गोत्री है। यहा पर किसी भी वर्ण की अपेक्षा नहीं रखी गई है। ब्राह्मण होकर भी यदि वह निंद्य एव दीन दुखी कुल मे है तो नीच गोत्र वाला है और यदि शूद्र होकर भी राजकुल मे उत्पन्न हुआ है अथवा अपने शुभ कृत्यो से प्रतिष्ठित है तो वह उच्च गोत्र वाला है।

वर्ण के साथ गोत्र का कोई भी सबध नहीं है। कारण कि गोत्र कर्म की व्यवस्था तो प्राणीमात्र म सर्वत्र है, किन्तु वर्ण व्यवस्था तो भारतवर्ष मे ही पाई [illegible]। वर्ण व्यवस्था मनुष्यों

की योग्यतानुसार श्रेणी विभाग है जब कि गोत्र का आधार कर्म पर है। अतः गोत्रकर्म कुल की अथवा व्यक्ति की प्रतिष्ठा अथवा आचरण के अनुसार उच्च और नीच गोत्री होसकता है। इसप्रकार गोत्र कर्म की शास्त्रीय व्याख्या सिद्ध होने पर जैन धर्मकी उदारता स्पष्ट मालूम होजाती है। ऐसा होने पर ही जैन धर्म पतित पावन या दीनोद्धारक सिद्ध होता है।

पतितों का उद्धार।

जैन धर्म की उदारता पर ज्यों २ गहरा विचार किया जाता है त्यों त्यों उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती है। जैन धर्म ने महान पातकियों को पवित्र किया है, दुराचारियों को सन्मार्ग पर लगाया है, दीनों को उच्च किया है और पतितों का उद्धार करके अपना जगद्बन्धुत्व सिद्ध किया है। यह बात इतने मात्रसे सिद्ध होजाती है कि जैनधर्म में वर्ण और गोत्र को कोई स्थाई, अटल या जन्मगत स्थान नहीं है। जिन्हें जातिका कोई अभिमान है उनके लिये जैन ग्रंथकारों ने इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में लिखकर उस जाति अभिमान को चूर चूर कर दिया है कि—

> न विप्राविप्रयोरस्ति सर्वथा शुद्धशीलता।
> कालेनानादिना गोत्रे स्खलनं क न जायते॥
> संयमो नियमः शीलं तपो दानं दमो दया।
> विद्यन्ते तात्त्विका यस्यां सा जातिर्महती मता॥

अर्थात्—ब्राह्मण और अब्राह्मण की सर्वथा शुद्धि का दावा नहीं किया जासकता है, कारण कि इस अनादि काल में न जाने किसके कुल या गोत्र में कब पतन होगया होगा। इस लिये वास्तव में उच्च जाति तो वही है जिसमें संयम, नियम, शील, तप, दान,

दमन और त्या पाड जाती है।

इसी प्रकार आर भी अनेक ग्रथों मे वर्ण और जाति कल्पना की धज्जी उडाई गई है। प्रमेय कमल मार्त्तण्ड में तो इतनी खूबी से जाति कल्पना का खण्डन किया गया है कि अच्छों अच्छों की बोलती बन्द हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि जैनधर्मम जाति की अपेक्षा गुणों के लिये विशेष स्थान है। महा नीच कहा जाने वाला व्यक्ति अपने गुणों से उच्च हो जाता है, भयकर दुराचारी प्रायश्चित लेकर पवित्र हो जाता है और वैसा भी पतित व्यक्ति पावन बन सकता है। इस सम्बन्ध मे अनेक उदाहरण पहिले दो प्रकरणो म दिये गये हैं। उनके अतिरिक्त और भी प्रमाण देखिये।

स्वामी कार्तिकेय महाराज के जीवन चरित्र पर यदि दृष्टिपात किया जावे तो मालूम होगा कि एक व्यभिचारजात व्यक्ति भी किस प्रकार से परम पूज्य और जैनियों का गुरु हो सकता है। उस कथा का भाव यह है कि—अग्नि नामक राजा ने अपनी कृत्तिका नामक पुत्री से व्यभिचार किया और उससे कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथा—

स्वपुत्री कृत्तिका नाम्नी परिणीता स्वयं हठात्।
कैश्चिद्दिनैस्ततस्तस्या कार्तिकेयो सुतोऽभवत्॥

इसके बाद जब व्यभिचारजात कार्तिकेय बडा हुआ और पिता कहो या नाना का जब यह अत्याचार ज्ञात हुआ तब विरक्त होकर एक मुनिराज के पास जाकर जैन मुनि होगया। यथा—

नत्वा मुनीन् महाभक्तया दीक्षामादाय स्वर्गगाम्।
मुनिर्जातो जिनेन्द्रोक्तसप्ततत्त्वविचक्षणः॥

—आराधना कथाकोश की ६६ वीं कथा।

मुनि श्री सूर्यसागर जी महाराज का यह वक्तव्य जैनधर्म की उदारता और वर्तमान जैनों की संकुचित मनोवृत्ति को स्पष्ट सूचित करता है। लोगों ने स्वार्थ, कषाय, अज्ञान एवं दुराग्रह के वशीभूत होकर उदार जैन मार्ग को कंटकाकीर्ण, संकुचित एवं भ्रम पूर्ण बना डाला है। अन्यथा यहां तो महा पापियों का उसी भव में उद्धार होगया है। इसलिये एक धीमर (मच्छीमार) की लड़की उसी भव में क्षुल्लिका होकर स्वर्ग गई थी। यथा

तत समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पित।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्र सुरेन्द्राद्य समर्चितम् ॥ २४ ॥
सजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥ २४ ॥

आराधना कथा कोश कथा ४८ ॥

अर्थात् मुनि श्री समाधिगुप्त के द्वारा निरूपित तथा देवों से पूज्य जिनधर्म का श्रवण करके 'काणा' नामकी धीमर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका हो गई और यथाशक्ति तप करके स्वर्ग को गई।

जहां मांस भक्षी शूद्र कन्या इस प्रकार से पवित्र होकर जैनों की पूज्य हो जाती है, वहां इस धर्म की उदारता के सम्बन्ध में और क्या कहा जाय ? एक नहीं, ऐसे पतित पावन अनेक व्यक्तियों का चरित्र जैन शास्त्रों में भरा पड़ा है। उनसे उदारता की शिक्षा ग्रहण करना जैनों का कर्तव्य है।

यह खेद की बात है कि जिन बातों से हमें परहेज करना चाहिये उनकी ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं है और जिनके विषय में धर्म शास्त्र एवं लोकशास्त्र खुली आज्ञा देते हैं या जिनके ... पूर्वाचार्य ग्रन्थों में लिख गये हैं उन पर ध्यान

नहीं दिया जाता है। प्रत्युत विरोध तक किया जाता है। क्या यह कम दुर्भाग्य की बात है? हमारे धर्म शास्त्रो ने आचार शुद्ध होने वाले प्रत्येक वर्ण या जाति के व्यक्ति को शुद्ध माना है। यथा-

शूद्रोऽप्युपस्कराचारवपु: शुद्धयास्तु तादृशः।
जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धो ह्यात्मास्ति धर्म भाक्॥

सागार धर्मामृत २-२२

अर्थात्— जो शूद्र भी है यदि उसका आसन वस्त्र आचार और शरीर शुद्ध है तो वह ब्राह्मणादि के समान है। तथा जाति से हीन (नीच) होकर भी कालादि लब्धि पाकर वह धर्मात्मा हो जाता है।

यह कैसा स्पष्ट एवं उदारता मय कथन है! एक महा शूद्र एवं नीच जाति का व्यक्ति अपने आचार विचार एवं रहन सहन को पवित्र करके ब्राह्मण के समान बन जाता है। ऐसी उदारता और कहां मिलेगी? जैन धर्म तो गुणों की उपासना करना बतलाता है, उसे जन्म जात शरीर की कोई चिन्ता नहीं है। यथा-

"व्रत स्थमपि चाण्डाल त देवा ब्राह्मण विदुः॥"

रविषेणाचार्य।

अर्थात्— चाण्डाल भी व्रत धारण करके ब्राह्मण हो सकता है। कहिये इतनी महान उदारता और कहां हो सकती है? सच बात तो यह है कि—

जहां वर्ण से सदाचार पर अधिक दिया जाता है जोर,
तर जाते हैं निमिष मात्र में यमपालादिक अंजन चोर॥
जहां जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान,
वही धर्म है मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान॥

मनुष्य जाति को एक मान कर उसके प्रत्येक व्यक्ति

अधिकार देना ही धर्म की उदारता है। जो लोग मनुष्यों में भेद देखते हैं उनके लिये आचार्य लिखते हैं—

"नास्ति जाति कृतो भेदो मनुष्याणां गवाश्ववत्"

गुणभद्राचार्य।

अर्थात्—जिस प्रकार पशुओं में या तिर्यंचों में गाय और घोड़े आदि का भेद होता है उस प्रकार मनुष्यों में कोई जाति कृत भेद नहीं है। कारण कि "मनुष्यजातिरेकैव" मनुष्य जाति तो एक ही है। फिर भी जो लोग इन आचार्य वाक्यों की अवहेलना करके मनुष्यों को सैकड़ों नहीं हजारों जातियों में विभक्त करके उन्हें नीच ऊँच मान रहे हैं उनको क्या कहा जाय?

याद रहे कि आगम के साथ ही साथ जमाना भी इस बात को बतला रहा है कि मनुष्य मात्र से बधुत्व का नाता जोड़ो, उनसे प्रेम करो और कुमार्ग पर जाते हुये भाइयों को सन्मार्ग बताओ तथा उन्हें शुद्ध करके अपने हृदय से लगाओ। यही मनुष्य का कर्तव्य है यही जीवन का उत्तम कार्य है और यही धर्म का प्रधान अंग है। भला मनुष्यों के उद्धार समान और दूसरा धर्म क्या होसकता है? जो मनुष्यों से घृणा करता है उसने न तो धर्म को पहिचाना है और न मनुष्यता को?

वास्तव में जैन धर्म तो इतना उदार है कि जिसे कहीं भी शरण न मिले उसके लिये भी जैन धर्म का फाटक हमेशा खुला रहता है। जब एक मनुष्य दुराचारी होने से जाति वहिष्कृत और पतित किया जा सकता है तथा अधर्मात्मा करार दिया जा सकता है तब यह बात स्वयं सिद्ध है कि वही अथवा अन्य व्यक्ति सदाचारी होने से पुन जाति में आसकता है, पावन हो सकता है और धर्मात्मा बन सकता है। समझ में नहीं आता कि ऐसी

सीधी सादी एव युक्ति सगत बात क्यों समझ मे नहीं आती ?

यदि आज कल के जैनियों की भांति महावीर स्वामी की भी सकुचित दृष्टि होती तो वे महा पापी, अत्याचारी, मास लोलुपी, नर हत्या करने वाले निर्दयी मनुष्यो को इस पतित पावन जैनधर्म की शरण मे कैसे आने देते ? तथा उन्हे उपदेश ही क्यों देते ? उनका हृदय तो विशाल था, वे सच्चे पतित पावन प्रभु थे, उनमे विश्व प्रेम था इसीलिये वे अपने शासन मे सबको शरण देते थे। मगर समझ मे नहीं आता कि महावीर स्वामी के अनुयायी आज उस उदार बुद्धि से क्यों काम नहीं लेते ?

भगवान महावीर स्वामी का उपदेश प्राय प्राकृत भाषा में पाया जाता है। इसका कारण यही है कि उस जमाने मे नीच से नीच वर्ग की भी आम भाषा प्राकृत थी। उन सबको उपदेश देने के लिये ही साधारण बोलचाल भाषा मे हमारे धर्म ग्रन्थो की रचना हुई थी।

जो पतित पावन नहीं है वह धर्म नहीं है, जिसका उपदेश प्राणी मात्र के लिये नहीं है वह देव नहीं है, जिसका कथन सबके लिये नहीं है वह शास्त्र नहीं है, जो नीचो से घृणा करता है और उन्हें कल्याण मार्ग पर नहीं लगा सकता वह गुरु नहीं है। जैन धर्म मे यह उदारता पाई जाती है इसी लिये यह सर्व श्रेष्ठ है। वर्तमान में जैनधर्म की इस उदारता को प्रत्यक्ष रूप मे अमल कर दिखाने की जरूरत है।

शास्त्रीय दण्ड विधान।

किसी भी धर्म की उदारता का पता उस के प्रायश्चित या दण्ड विधान से भी लग सकता है। जैन शास्त्रों म दण्ड विधान बहुत ही उदार दृष्टि से वर्णित किया गया है। यह बात दूसरी,

कि हमारी समाज ने इस ओर बहुत दुर्लक्ष्य किया है, इसी लिये
उसने हानि भी बहुत उठाई है। सभ्य संसार इस बात को पुकार
पुकार कर कहता है कि अगर कोई अंधा पुरुष ऐसे मार्ग पर जा
रहा हो कि जिस पर चल कर उसका आगे पतन हो जायगा,
भयानक कुये में जा गिरेगा और लापता हो जायगा तो एक दयालु
समझदार एवं विवेकी व्यक्ति का कर्तव्य होना चाहिये कि वह
उस अंधे का हाथ पकड़ कर ठीक मार्ग पर लगादे, उसको भयानक
गर्त से उबार ले और कदाचित वह उस महागर्त में पड़ भी
गया हो तो एक मर्दानगी व्यक्ति का कर्तव्य है कि जब तक उस
अंध की श्वास चल रही है, जब तक वह अंतिम घड़ियां गिन रहा
है तब तक भी उसे उभार कर उसकी रक्षा करले। बस, यही परम
दया धर्म है, और यही एक मानवीय कर्तव्य है।

इसी प्रकार जब हम यह अभिमान है कि हमारा जैनधर्म
परम उदार है सार्वधर्म है, पतितोद्धारक मानवीय धर्म है तथा यह
सच्ची दृष्टि से देखने वाला धर्म है तब हमारा कर्तव्य होना चाहि
कि जो कुमार्गरत हो रहे हैं, जो सत्यमार्ग को छोड़ बैठे हैं,
जो मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य को सेवन करते हैं उन्हें
देख देखकर सुमार्ग पर लगावें। जिस धर्म का हमें अभिमान
से दूसरों को भी लाभ उठाने देवें।

लेकिन किनका यह भ्रम है कि अन्याय सेवन करने
मदिरा सेवी, मिथ्यात्वी एवं विधर्मी को अपना
जावे, उन्हें कैसे साधर्मी बनाया जावे
। अरे! धर्म तो मिथ्यात्व, अन्याय
ही होता है। यदि धर्म में यह शक्ति
कैसे हो सकता है? और जो
धर्म ही कैसे कहा

दुराचारियों का दुराचार छुड़ाकर उन्हें साधर्मी बनाने से धर्म व समाज लाञ्छित नहीं होता है, किन्तु लाञ्छित होता है तब जबकि उसमें दुराचारी और अन्यायी लोग अनेक पाप करते हुये भी मूछों पर ताव देवें और धर्मात्मा बने बैठे रहें। विष के खाने से मृत्यु हो जाती है लेकिन उसी विष को शुद्ध करके सेवन करने से अनेक रोग दूर हो जाते हैं। प्रत्येक विवेकी व्यक्ति का हृदय इस बात की गवाही देगा कि अन्याय अभक्ष्य, अनाचार और मिथ्यात्व का सेवनकरने वाले जैन से वह अजैन लाख दरजे अच्छा है जो इन बातों से परे है और अपने परिणामों को सरल एवं निर्मल बनाये रखता है।

मगर खेद का विषय है कि आज हमारी समाज दूसरों को अपनावे, उन्हें धर्म पर लावे यह तो दूर रहा, किन्तु स्वयं ही गिर कर उठना नहीं चाहती, बिगड़कर सुधरना उसे याद नहीं है। इस समय एक कवि का वाक्य याद आ जाता है कि—

"अय कौम तुझको गिर के उभरना नहीं आता।
इक बार बिगड़ कर के सुधरना नहीं आता॥"

यदि किसी साधर्मी भाई से कोई अपराध बन जाय और वह प्रायश्चित लेकर शुद्ध होने को तैयार हो तो भी हमारी समाज उस पर दया नहीं लाती। समाज के सामने वह बिचारा मनुष्यों की गणना में ही नहीं रह जाता है। उसका मुसलमान और ईसाई हो जाना मंजूर, मगर फिर से शुद्ध होकर वह जैनधर्मी नहीं हो सकता जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन नहीं कर सकता, समाज में एक साथ नहीं बैठ सकता और किसी के सामने सिर ऊंचा करके नहीं देख सकता, यह कैसी विचित्र विडंबना है।

उदारचेता पूर्वाचार्य प्रणीत प्रायश्चित्त संबंधी शास्त्रों को

देखिये तो मालूम होगा कि उनमें कैसे कैसे पापी, हिंसक, दुराचारी और हत्यारे मनुष्यों तक को दण्ड देकर पुनः स्थितिकरण करने का विधान किया गया है। इस विषयमें विशेष न लिखकर मात्र दो श्लोक ही दिये जाते हैं जिनसे आप प्रायश्चित्त शास्त्रों की उदारता का अनुमान लगा सकेंगे। यथा—

साधूपासकबालस्त्रीधेनूनां घातने क्रमात्।
यावद् द्वादशमासाः स्यात् षष्ठमर्धार्धहानियुक्॥
—प्रायश्चित्त समुच्चय।

अर्थात्—साधु उपासक, बालक, स्त्री और गाय के वध(हत्या) का प्रायश्चित्त क्रमशः आधी आधी हानि सहित बारह मास तक षष्ठोपवास (वेला) है।

इसका मतलब यह है कि साधु का घात करने वाला व्यक्ति १२ माह तक एकान्तर से उपवास करे, और इसके आगे उपवास बालक, स्त्री और गाय की हत्या में आधे आधे करे। पुनश्च—

तृणमांसात्पतत्सर्प परिसर्प जलौकसां।
चतुर्दशनवाद्यन्तक्षमणा निवधे छिदा ॥प्रा० मू०॥

अर्थात्—मृग आदि तृणचर जीवों के घात का १४ उपवास, सिंह आदि मांस भक्षियों के घात का १३ उपवास, मयूरादि पक्षियों के घात का १२ उपवास, सर्पादि के मारने का ११ उपवास, सरट आदि परिसर्पों के घात का १० उपवास और मत्स्यादि जलचर जीवों के घात का ९ उपवास प्रायश्चित्त बताया गया है।

नोट—विशेष प्रमाण परिशिष्ट भाग में देखिये।

इतने मात्र से मालूम हो जायगा कि जैनधर्म में उदारता है, प्रेम है, उद्धारकपना है, और कल्याणकारित्व है। एक बार गिरा हुआ व्यक्ति उठाया जा सकता है, पापी भी निष्पाप बनाया

सक्ता है और पतित को पावन किया जा सक्ता है।

जैनियो ! इस उदारता पर विचार करो, तनिक २ से अपराध करने वालों को जो धुतकारकर सदा के लिये अलहदा कर देते हो यह जुल्म करना छोड़ो और आचार्य वाक्यों को सामने रख कर अपराधी वधू का सच्चा न्याय करो। अब कुछ उदारता की आवश्यक्ता है और प्रेम भाव की जरूरत है। कारण कि लोगों को तनिक ही धक्का लगाने पर उन से द्वेष या अप्रीति करने पर वे घबड़ा कर या उपेक्षित होकर अपने धर्म को छोड़ बैठते हैं। और दूसरे दिन ईसाई या मुसलमान होकर किसी गिरजाघर या मसजिद में जा कर धर्म की खोज करने लगते हैं। क्या इस ओर समाज ध्यान नहीं देगी ?

हमारी समाज का सब से बड़ा अन्याय तो यह है कि एक ही अपराध में भिन्न २ दण्ड देती है। पुरुष पापी अपने बलात्कार या छल से किसी स्त्री के साथ दुराचार कर डाले तो स्वार्थी समाज उस पुरुष से लड्डू खाकर उसे जाति में पुन: मिला भी लेती है मगर वह स्त्री किसी प्रकार का भी दण्ड देकर शुद्ध नहीं की जाती। वह बिचारी अपराधिनी पंचों के सामने गिड़गिड़ाती है, प्रायश्चित्त चाहती है, कठोर से कठोर दण्ड लेने को तैयार होती है, फिर भी उसकी बात नहीं सुनी जाती, चाहे वह देखते ही देखते मुसलमान या ईसाई क्या न हो जाय। क्या यही न्याय है, और यही धर्म की उदारता है ? यह कृत्य तो जैनधर्म की उदारता को कलंकित करने वाले हैं।

अत्याचारी दण्ड विधान।

जैन शास्त्रों में सभी प्रकार के पापियों को प्रायश्चित्त दे-शुद्ध कर लेने का उदारतामय विधान पाया जाता है। मगर

कि उस ओर समाज का ध्यान तनिक भी ध्यान नहा है। फिर भी अत्याचारी दण्डविधि तो चालू हा है। यह दण्डविधि इतनी दूषित, अन्याय पूर्ण एवं विचित्र है कि उसे दण्ड विधान की विडम्बना हा कहना चाहिये। बुन्देलखण्ड आदि प्रान्तो का दण्ड विधान तो इतना भयकर एव क्रूर है कि उसे देख कर हृदय काप उठता है। उसके कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं—

१—मंदिर मे काम करते हुये यदि चिड़िया आदि का अडा पैर के नीचे अचानक आ जाय और दब कर मर जावे तो वह व्यक्ति और उसके घर के आदमी भी जाति से बन्द कर दिये जाते हैं और उनको मंदिर मे भी नहीं आने दिया जाता।

२—एक बैल गाड़ी म १० जैन स्त्री पुरुष बैठ कर जा रहे हों और उसके नीचे कोइ कुत्ता बिल्ली अकस्मात आकर दब मरे या गाडी हाकने वाले के प्रमाद से दब कर मर जाय तो गाडी मे बैठे हुये सभी व्यक्ति जैनधम और जाति से च्युत कर दिये जाते हैं। फिर वह विवाह शादियों म नहा बुलाया जाता है उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार बन्द कर दिया जाता है और वे देवदर्शन तथा पूजा आदि के अधिकारी नहीं रहते हैं।

३—यदि किसी के मकान या दरवाजे पर कोइ मुसलमान द्वेष वश अडे डाल जावे और वे मरे हुये पाये जावें तो बेचारा वह जैन कुटुम्ब जाति और धर्म से नष्ट कर दिया जाता है।

४—यदि किसी का नाम लेकर कोई स्त्री पुरुष क्रोधावेश मे आकर कुये मे गिर पडे या विष खा ले फासी लगाकर मर जाय तो वह लाछित माना गया व्यक्ति सकुटुम्ब जाति बहिष्कृत किया जाता है और मंदिर का फाटक भी सदा के लिए बन्द कर

५—यदि कोई विधवा स्त्री कुकर्मवश गर्भवती हो जाय और उसे दूषित करने वाला व्यक्ति लोभ देकर उस स्त्री से किसी दूसरे गरीब भाई का नाम लिवा दे तो वह बिचारा निर्दोष गरीब धर्म और जाति से पतित कर दिया जाता है।

इसी तरह से और भी अनेक दण्ड की विडम्बनायें हैं जिनके बल पर सैकड़ों कुटुम्ब जाति और धर्म से जुदे कर दिये जाते हैं। उसमें भी मजा तो यह है कि उन धर्म और जाति च्युतों का शुद्धि विधान बड़ा ही विचित्र है। वहा तो 'कुत्ता की छूत बिलैया को' लगाई जाती है। जैसे एक जाति च्युत व्यक्ति हीरालाल किसी पन्नालाल के विवाह में चुपचाप ही माड़वा के नीचे बैठकर सब के साथ भोजन कर आया और पीछे से सब को इस प्रकार से भोजन करना मालूम होगया तो वह हीरालाल शुद्ध हो जायगा, उस के सब पाप धुल जायगे और वह मन्दिर में जाने योग्य तथा जाति में बैठने योग्य हो जायगा। किन्तु वह पन्नालाल उस दोष का भागी हो जायगा और जो गति कल तक हीरालाल की थी वही आज से पन्नालाल की होने लगेगी! अब पन्नालाल जब धन्नालाल के विवाह में उसी प्रकार से जीम आयगा तो वह शुद्ध हो जायगा और धन्नालाल जाति च्युत माना जायगा। इस प्रकार से शुद्धि की विचित्र परम्परा चालू रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि अभावक, धनिक और रौब दौब वाले श्रीमान लोग किसी गरीब के यहा जीम कर मूछों पर ताव देने लगते हैं और बेचारे गरीब कुटुम्ब सदा के लिये धर्म और जाति से हाथ धो कर बैठे रोया करते हैं। बुन्देलखण्ड में ऐसे जाति च्युत [illegible] हैं जिन्हें 'बिनैकया' 'बिनैधावार' या 'लुहरीसैन' कहते हैं।

सैकड़ों बिनैकया कुटुम्ब तो ऐसे हैं जिनके [illegible] किसी ऐसे ही परम्परागत दोष से [illegible]

की वह शुद्ध सन्तान धर्म तथा जाति से च्युत होकर जैनियों का मुँह ताका करती है। उन बिचारों को इसका तनिक भी पता नहीं है कि हम धर्म और जाति से च्युत क्यों हैं उनका बेटी व्यवहार बड़ी ही कठिनाई से उसी विनैकया जाति में हुआ करता है। और वे बिना देवदर्शन या पूजादि के अपना जीवन पूर्ण किया करते हैं।

जैनियो! अपने वात्सल्य अंग को देखो, स्थितिकरण पर विचार करो, और अहिंसा धर्म की बड़ी बड़ी व्याख्याओं पर दृष्टिपात करो। अपने निरपराध भाइयों को इस प्रकार से मक्खी की भांति निकाल कर फेंक देना और उनकी सन्तान पर सन्तान को भी दोषी मानते रहना तथा उनके गिड़गिड़ाने पर और पुकार मिन्नतें करने पर भी ध्यान नहीं देना, क्या यही वात्सल्य है? क्या यही धर्म की उदारता है? क्या यही अहिंसा का आदर्श है?

जब कि ज्येष्ठा आर्यिका के व्यभिचार से उत्पन्न हुआ रुद्र मुनि हो जाता है, अग्नि राजा और उसकी पुत्री कृत्तिका के व्यभिचार से उत्पन्न हुआ पुत्र कार्तिकेय दिगम्बर जैन साधु हो जाता है, और व्यभिचारिणी स्त्री से उत्पन्न हुआ सुदृष्टि का जीव मुनि हो कर उसी भव से मोक्ष जाता है तब हमारी समाज के कर्णधार विचारे उन परम्परागत विनैकावार या जाति च्युत भाइयों को अभी भी जाति में नहीं मिलाना चाहते और न उन्हें जिन मन्दिर में जाकर दर्शन पूजन करने देना चाहते हैं, यह कितना भयंकर अत्याचार है। जैन शास्त्रों की ताक में रखकर इस प्रकार का अन्याय करना जैनत्व से सर्वथा बाहर है। अत यदि आप वास्तव में जैन हैं और जैन शास्त्रों की आज्ञा मानते हैं तो अपनी समाज में एक भी जैन भाई ऐसा नहीं रहना चाहिये जो जाति या मन्दिर से बहिष्कृत रहे। सबको यथोचित प्रायश्चित्त दे कर लेना ही जैनधर्म की सच्ची उदारता है।

उदारता के उदाहरण।

जैनधर्म में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जाति या वर्ण की अपेक्षा गुणों को महत्व दिया गया है। यही कारण है कि वर्ण की व्यवस्था जन्मतः न मानकर कर्म से मानी गई है। यथा—

मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ पर्व ३८-४५ ॥
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात् ।
वणिज्योऽर्थार्जनान्न्याय्यात् शूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥

—आदिपुराण पर्व ३८ ४६

अर्थात्—जाति नाम कर्म के उदय से उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है किन्तु जीविका के भेद से वह चार भागों (वर्णों) में विभक्त होगई है। व्रतों के संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक द्रव्य कमाने से वैश्य और नीच वृत्ति का आश्रय करने से शूद्र कहे जाते हैं।

तथा च—

क्षत्रियाः क्षततस्त्राणात् वैश्या वाणिज्ययोगतः ।
शूद्राः शिल्पादिसंबंधाज्जाता वर्णास्त्रयोऽप्यतः ॥

हरिवंशपुराण सर्ग ९-३९

अर्थात्—दुनिया की रक्षा करने वाले क्षत्रिय, व्यापार करने वाले वैश्य और शिल्पकला से संबंध रखने वाले शूद्र बनाए गये।

इस प्रकार जैनधर्म में वर्ण विभाग करके भी गुण की प्रतिष्ठा की गई है। और जाति या वर्ण का मद करने वालों की निन्दा की गई है तथा उन्हें दुर्गति का पात्र बताया है। [illegible]

म लक्ष्मीमती की कथा है। उसे अपनी ब्राह्मण जाति का बहुत अभिमान था। इसी से वह दुर्गति को प्राप्त हुई। इसलिए ग्रंथकार उपदेश देते हुए लिखते हैं कि—

मानतो ब्राह्मणी जाता क्रमाद्धीवरदेहजा।
जातिगर्वो न कर्तव्यस्तत्र कुत्रापि धीधनै ॥४५-१६॥

अर्थात्—जाति गर्व के कारण एक ब्राह्मणी भी ढीमर की लड़की हुई, इसलिए विद्वानों को जातिका गर्व नहीं करना चाहिये।

इधर तो जाति का गर्व न करने का उपदेश देकर उदारता का पाठ पढ़ाया है और उधर जाति गर्व के कारण पतित होकर ढीमर के यहां उत्पन्न होने वाली लड़की का आदर्श उद्धार बता कर जैन धर्म की उदारता को और भी स्पष्ट किया है। यथा—

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितम्।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥२४॥
सजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥२५॥

आराधना कथाकोश न० ४५॥

अर्थात्—समाधिगुप्त मुनिराज के मुख से जैनधर्म का उपदेश सुनकर वह धीमर (मल्लाहिन) की लड़की क्षुल्लिका होगई और शान्ति पूर्वक तप करके स्वर्ग गई। इत्यादि।

इस प्रकार से एक शूद्र (धीमर) की कन्या मुनिराज का उपदेश सुनकर जैनियों की पूज्य क्षुल्लिका हो जाती है। क्या यह जैन धर्म की कम उदारता है? ऐसे उदारता पूर्ण अनेक उदाहरण तो इसी पुस्तक के अनेक प्रकरणों में लिखे जा चुके हैं और ऐसे ही सैकड़ों उदाहरण और भी उपस्थित किये जा सकते हैं जो जैन

धर्म का मुख उज्ज्वल करने वाले हैं। लेकिन विस्तार भय से उन सब का वर्णन करना यहां अशक्य है। हां, कुछ ऐसे उदाहरणों का सारांश यहां उपस्थित किया जाता है। आशा है कि जैनसमाज इस पर गंभीरता से विचार करेगी।

१–अग्निभूत—मुनि ने चाण्डाल की अंधी लड़की को श्राविका के व्रत धारण कराये। वही तीसरे भव मे सुकुमाल हुई थी।

२–पूर्णभद्र—और मानभद्र नामक दो वैश्य पुत्रों ने एक चाण्डाल को श्रावक के व्रत ग्रहण कराये। जिससे वह चाण्डाल मर कर सोलहवें स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

३–म्लेच्छ कन्या—जरा से भगवान नेमिनाथ के चाचा वसुदेवने विवाह किया, जिससे जरत्कुमार हुआ। उसने मुनिदीक्षा ग्रहण की थी।

४–महाराजा श्रेणिक—बौद्ध थे तब शिकार खेलते थे और घोर हिंसा करते थे, मगर जब जैन हुए तब शिकार आदि त्याग कर जैनियों के महापुरुष होगये।

५–विद्युत चोर—चोरों का सरदार होने पर भी जम्बू स्वामी के साथ मुनि होगया और तप करके सर्वार्थसिद्धि गया।

६–भैंसा तक का मांस खाजाने वाला—पापी मृगध्वज

मुनिदत्तमुनेः पार्श्वं जैनींदीक्षां समाश्रितः।
चयं नीत्वा सुधीर्ध्यानात् घातिकर्मचतुष्टयम्।
केवलज्ञानमुत्पाद्य सजातो भुवनार्चितः॥

आराधना कथा ४४ वीं॥

मुनिदत्त मुनि के पास जिनदीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों को नाश कर जगत्पूज्य हो जैनियों का परमात्मा बन गया।

७-परस्त्री सेवी राजा मुनिदान—राजा सुमुख वीरक सेठ की पत्नी वनमाला पर मुग्ध होगया। और उसे दूतिया के द्वारा अपने महलों में बुला लिया तथा उसे घर नहीं जाने दिया और अपनी स्त्री बना कर उससे प्रगाढ़ काम सेवन करने लगा। एक दिन राजा सुमुख के मकान पर महामुनि पधारे। वे सब जानने वाले विशुद्ध ज्ञानी थे, फिर भी राजा के यहा आहार लिया। राजा सुमुख और वनमाला दोनों (व्यभिचारी या व्यभिचारिणी) ने मिलकर आहार दिया और पुण्य संचय किया। इसके बाद भी वे दोनों काम सेवन करते रहे। एक समय बिजली गिरने से वे मर कर विद्याधर विद्याधरी हुए। इन्हीं दोनों से 'हरि' नामक पुत्र हुआ जिससे 'हरिवंश' की उत्पत्ति हुई। (देखो हरिवंश पुराण सर्ग१४ श्लोक ४० से सर्ग १५ श्लोक १३ तक)

वहा तो यह उदारता कि ऐसे व्यभिचारी लोग भी मुनिदान देकर पुण्य संचय कर सकें और यहा आज तनिक से लांछन से पतित किया हुआ जैन दस्सा विनैका या जातिच्युत होकर जिनेन्द्र के दर्शनों को भी तरसता है। खेद !

८-वेश्या और वेश्या सेवी का उद्धार—हरिवंशपुराण के सर्ग २१ में चारुदत्त और वसन्तसेना का बहुत ही उदारतापूर्ण जीवन चरित्र है। उसका कुछ भाग श्लोकों को न लिख कर उनकी संख्या सहित यहा दिया जाता है। चारुदत्त ने बाल्यावस्था में ही अणुव्रत लेलिये थे (२१-१२) फिर भी चारुदत्त काका के साथ वसन्तसेना वेश्या के यहा माता की प्रेरणा से पहुंचाया गया (२१-४०) वसन्तसेना वेश्या की माता ने चारुदत्त के हाथमें अपनी पुत्री का हाथ पकड़ा दिया (२१-४८) फिर वे दोनों मजे से संभोग करते रहे। अन्त में वसन्तसेना की माता ने चारुदत्त को घर से

बाहर निकाल दिया (२१ ७३) चारुदत्त व्यापार करने चले गये। फिर वापिस आकर घर में आनन्द से रहने लगे। वसन्तसेना वेश्या भी अपना घर छोड़कर चारुदत्त के साथ रहने लगी। उसने एक आर्यिका के पास श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे अतः चारुदत्त ने भी उसे सहर्ष अपनाया और फिर पत्नी बनाकर रखा (२१ १७६) बाद में वेश्या सेवी चारुदत्त मुनि होकर सर्वार्थसिद्धि पधार तथा उस वेश्या को भी सद्‌गति मिली।

इस प्रकार एक वेश्या सेवी और वेश्या का भी जहां उद्धार हो सकता हो उस धर्म की उदारता का फिर क्या पूछना? मजा तो यह है कि चारुदत्त उस वेश्या को फिर भी प्रेम सहित अपना कर अपने घरपर रख लेता है और समाजने कोई विरोध नहीं किया। मगर आजकल तो स्वार्थी पुरुष समाज में ऐसे पतितों को एक तो पुनः मिलाते नहीं हैं, और यदि मिलावें भी तो पुरुष को मिलाकर बिचारी स्त्री को अनाथनी, भिखारिणी और पतित बनाकर सदा के लिये निकाल देते हैं। क्या यह निर्दयता जैनधर्म की उदारता के सामने घोर पाप नहीं है?

९–व्यभिचारिणी की सन्तान—हरिवंश पुराण के सर्ग २९ की एक कथा बहुत ही उदार है। उसका भाव यह है कि तपस्विनी ऋषिदत्ता के आश्रम में जाकर राजा शीलायुध ने एकान्त पाकर उससे व्यभिचार किया (३९) उसके गर्भ से ऐणी पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव पीड़ा से ऋषिदत्ता मर गई और सम्यक्त्व के प्रभाव से नाग कुमारी हुई व्यभिचारी राजाशीलायुध दिगम्बर मुनि होकर स्वर्ग गया (५७)

ऐणी पुत्र की कन्या प्रियंगुसुन्दरी को एकान्त में पाकर वसुदेव ने उसके साथ काम क्रीडा की (६८) और उसे व्यभिचारजात जानकर भी अपनाया और सभोग करने के बाद सब के सामने

प्रकट विवाह किया (७०)

१०-मांसभक्षी की मुनिदीक्षा—सुधर्मा राजा को मांस भक्षण का शौक था। एक दिन मुनि चित्ररथ के उपदेश से मांस त्याग कर तीनसौ राजाओं के साथ मुनि हो गया (हरि० ३३ १५२)

११-कुमारी कन्या की सन्तान—राजा पाण्डु ने कुन्ती से कुमारी अवस्था में ही सम्भोग किया, जिससे कर्ण उत्पन्न हुये।

'पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः'।
॥ हरि० ४५ ३७ ॥

और फिर बाद में उसी से विवाह हुआ, जिससे युधिष्ठिर अर्जुन और भीम उत्पन्न होकर मोक्ष गये।

१२-चाण्डाल का उद्धार—एक चाण्डाल जैनधर्म का उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया और दीनता को छोड़कर चारों प्रकार के आहारों का परित्याग करके व्रती हो गया। वही मरकर नन्दीश्वर द्वीप में देव हुआ। यथा—

निर्वेदी दीनतां त्यक्त्वा त्यक्ताहारश्चतुर्विध
मासेन श्वपचो मृत्वा भूत्वा नन्दीश्वरोऽमर ॥
॥ हरि० ४३ १५५ ॥

इस प्रकार एक चाण्डाल अपनी दीनता को (कि मैं नीच हूँ) छोड़ कर व्रती बन जाता है और देव होता है। ऐसी पतितोद्धारक उदारता और कहां मिलेगी?

१३-शिकारी मुनि होगया—जंगल में शिकार खेलता हुआ और मृग का वध करके आया हुआ एक राजा मुनिराज के उपदेश से खून भरे हाथों को धोकर तुरन्त मुनि हो जाता है।

१४-भील के श्रावक व्रत—महावीर स्वामी का जीव जब भील था तब मुनिराज के उपदेश से श्रावक के व्रत लेलिये थे और

क्रमशः विशुद्ध होता हुआ महावीर स्वामी की पर्याय में आया। इन उदाहरणों से जैनधर्म की उदारता का कुछ ज्ञान हो सकता है। यह बात दूसरी है कि वर्तमान जैन समाज इस उदारता का उपयोग नहीं कर रही है। इसीलिए उसकी दिनोंदिन अवनति हो रही है। यदि जैन समाज पुनः अपने उदार धर्म पर विचार करे तो जैनधर्म का समस्त जगत में अद्भुत प्रभाव जम सकता है।

नोट—विशेष उदाहरण परिशिष्ट भाग में देखिये।

जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार।

इस पुस्तक में अभी तक ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा चुके हैं जिन से ज्ञात हुआ होगा कि घोर से घोर पापी, नीच से नीच आचरण वाले और चांडालादिक दीन हीन शूद्र भी जैनधर्म की शरण लेकर पवित्र हुये हैं। जैनधर्म में सब को पचाने की शक्ति है। जहां पर वर्ण की अपेक्षा सदाचार को विशेष महत्व दिया गया है वहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रादिक का पक्षपात भी कैसे हो सकता है? इसी लिए कहना होगा कि जैनधर्म में शूद्रों को भी वही अधिकार हैं जो ब्राह्मणादिक को हो सकते हैं शूद्र जिन मन्दिर में जा सकते हैं, जिन पूजा कर सकते हैं, जिन बिम्ब का स्पर्श कर सकते हैं, उत्कृष्ट श्रावक तथा मुनि के व्रत ले सकते हैं। नीचे लिखी कुछ कथाओं से यह बात विशेष स्पष्ट हो जाती है। इन बातों से व्यर्थ ही न भड़क कर इन शास्त्रीय प्रमाणों पर विचार करिये।

(१) श्रेणिक चरित्र में तीन शूद्र कन्याओं का विस्तार से वर्णन है उनके घर में मछलियां पाली जाती थीं। वे तीनों नीच कुल में उत्पन्न हुई थीं और उनका रहन सहन, आकृति आदि बहुत ही खराब थी। एक बार वे मुनिराज के पास पहुंची और उनके उपदेश से प्रभावित हो, अपने उद्धार का मार्ग पूछा। मुनिराज ने उन्हें

इस कथा भाग से जैनधर्म की उदारता अधिक स्पष्ट हो जाती है। जहां आज के दुराग्रही लोग स्त्री मात्र को पूजा प्रक्षाल का अनधिकारी बतलाते हैं वहां मुर्गा मुर्गियों को पालने वाली शूद्र जाति की कन्यायें जिनमन्दिर में जाकर महा पूजा करती हैं और अपना भव सुधार कर देव हो जाती हैं। शूद्रों की कन्याओं का समाधिमरण धारण करना, बीजाक्षरों का जाप करना आदि भी जैनधर्म की उदारता को उद्घोषित करता है।

इसके अतिरिक्त एक ग्वाला के द्वारा जिन पूजा का विधान बताने वाली भी ११३ वीं कथा आराधना कथाकोश में है। उस का भाव इस प्रकार है—

विधान व्रत करने को कहा। इस व्रतमें भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा का प्रक्षाल-पूजादि, मुनि और श्रावकों को दान तथा अनेक धार्मिक विधियां (उपवासादि) करनी पड़ती हैं। उन कन्याओं ने यह सब शुद्ध अन्त करण से स्वीकार किया। यथा—

तिस्रोपि तद्व्रतं चक्रुरुद्यापनक्रियायुतम्।
मुनिराजोपदेशेन श्रावकाणां सहायत.॥ ५७॥
श्रावकव्रतसंयुक्ता बभूवुस्ताश्च कन्यकाः
क्षमादिव्रतसंकीर्णा. शीलांगपरिभूषिता.॥ ५८॥
कियत्काले गते कन्या आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्यां महता चक्रुर्मनोवाक्कायशुद्धित.॥ ५९॥
तत आयुःक्षये कन्या कृत्वा समाधिपंचताम्।
अर्हद्बीजाक्षरं स्मृत्वा गुरुपादं प्रणम्य च॥ ६०॥
पंचमे दिवि संजाता महादेवा स्फुरत्प्रभा'।
सच्छित्वा स्त्रीलिंगं सानन्दयौवनान्विताः॥ ६१॥
—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार।

अर्थात्-उन तीनों शूद्र कन्याओं ने मुनिराज के उपदेशानुसार श्रावकों की सहायता से उद्यापन क्रिया सहित लब्धिविधान व्रत किया। तथा उन कन्याओं ने श्रावक के व्रत धारण करके क्षमादि दश धर्म और शीलव्रत धारण किया। कुछ समय बाद उन शूद्र कन्याओं ने जिन मंदिर में जाकर मन वचन काय की शुद्धता पूर्वक जिनेन्द्र भगवान की बड़ी पूजा की। फिर आयु पूर्ण होने पर वे कन्यायें समाधिमरण धारण करके अर्हन्त देव के बीजाक्षरों को स्मरण करती हुई और मुनिराज के चरणों को नमस्कार करके स्त्रीलिंग छेद कर पांचवें स्वर्ग में देव हुईं।

इस कथा भाग से जैनधर्म की उदारता अधिक स्पष्ट हो जाती है। जहां आज ये दुराग्रही लोग स्त्री मात्र को पूजा प्रक्षाल का अनधिकारी बतलाते हैं वहां मुर्गा मुर्गियों को पालने वाली शूद्र जाति की कन्यायें जिनमन्दिर में जाकर महा पूजा करती हैं और अपना भव सुधार कर देव हो जाती हैं। शूद्रों की कन्याओं का समाधिमरण धारण करना, बीजाक्षरों का जाप करना आदि जैनधर्म की उदारता को उद्घोषित करता है।

इसके अतिरिक्त एक ग्वाला के द्वारा जिन पूजा का ... बताने वाली भी ११२ वीं कथा आराधना कथाकोश में है ... का भाव इस प्रकार है—

(२) धनदत्त नामक एक ग्वाला को गायें चराते ... तालाब में सुन्दर कमल मिल गया। ग्वाला ने जिनमन्दिर ... राजा के द्वारा सुगुप्त मुनि से पूछा कि सर्व श्रेष्ठ ... कमल चढ़ाना है। आप बताइये कि संसार में सर्व श्रेष्ठ ... मुनिराज ने जिन भगवान को सर्व श्रेष्ठ बतलाया, ... ग्वाला राजा और नागरिकों के साथ जिनमन्दिर ... जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति (चरणों) पर वह कमल ... हाथों से भक्ति पूर्वक चढ़ा दिया। यथा —

> तदा गोपालकः सोऽपि स्थित्वा श्रीमज्जिन...
> भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्मं गृहाणेदमिति ...
> उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जो परिक्षिप्त्वा ...
> गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्म ...॥

इस प्रकार एक शूद्र ग्वाला के द्वारा जिन... पर कमल का चढ़ाया जाना शूद्रों,

करता है। ग्रन्थकार ने भी इसे मुग्धजनों के इस कार्य को सुख कारी बतलाया है।

इसी प्रकार और भी अनेक कथाएं शास्त्रों में भरी पडी हैं जिन में शूद्रों को वही अधिकार दिये गये हैं जो कि अन्य वर्णों को हैं। (३) सोमदत्त माली प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था। चम्पानगर का एक ग्वाला मुनिराज से णमोकार मन्त्र सीख कर स्वर्ग गया। (४) अनगसेना वेश्या अपने प्रेमी धनकीर्ति सेठ के मुनि हो जाने पर स्वयं भी दीक्षित हो गई और स्वर्ग गई। (५) एक टीमर (कहार) की पुत्री पियगुलता सम्यक्त्व में दृढ थी। उसने एक साधु के पाखण्ड की धज्जियां उड़ादी और उसे भी जैन बनाया था। (६) काणा नाम की ढीमर की लड़की की क्षुल्लिका होने की कथा तो हम पहिलेही लिख आये हैं (७) देविल कुम्हार ने एक धर्मशाला बनवाई, वह जैनधर्मका श्रद्धानी था। अपनी धर्मशाला मे दिगम्बर मुनिराज को ठहराया। और पुण्य के प्रताप से वह देव होगया। (८) कामसेना वेश्या जैनधर्मकी परम उपासिका थी। उसने जिन भवन को दान दिया था। उसमें शूद्र जाति के मुनि भी ठहरते थे। (९) तेली जाति की एक महिला मानकब्बे जैनधर्म पर श्रद्धा रखती थी, आर्यिका श्रीमति की वह पट्ट शिष्या थी। उसने एक जिन मन्दिर भी बनवाया था।

इन उदाहरणों से शूद्रों के अधिकारों का कुछ भान हो सकता है। श्वेताम्बर जैन शास्त्रों के अनुसार तो चाण्डाल जैसे अस्पृश्य कहे जाने वाले शूद्रों को भी दीक्षा देने का वर्णन है। (१०) चित्त और संभूति नामक चाण्डाल पुत्र जब वैदिकों के तिरस्कार से दुखी होकर आत्मघात करना चाहते थे तब उन्हें जैन दीक्षा सहायक हुई ने उन्हें अपनाया। (११) हरिकेशी चाण्डाल भी जैन

वैदिकों के द्वारा तिरस्कृत हुआ तब उसने जैनधर्म की शरण ली और जैन दीक्षा लेकर असाधारण महात्मा बन गया।

इस प्रकार जिस जैनधर्म ने वैदिकों के अत्याचार से पीड़ित प्राणियों को शरण देकर पवित्र बनाया, उन्हें उच्च स्थान दिया और जाति मद का मर्दन किया, वही पतित पावन जैनधर्म वर्तमान के स्वार्थी, संकुचित दृष्टि एवं जाति मदमत्त जैनों के हाथों में आकर बदनाम हो रहा है। खेद है कि हम प्रति दिन शास्त्रों की स्वाध्याय करते हुये भी उनकी कथाओं पर, सिद्धान्त पर, अथवा अन्तरंग दृष्टि पर ध्यान नहीं देते हैं। ऐसी स्वाध्याय किस काम की ? और ऐसा धर्मात्मापना किस काम का ? जहां उदारता से विचार न किया जाय।

जैनाचार्यों ने प्रत्येक शूद्र की शुद्धि के लिये तीन बातें मुख्य बताई हैं। १-मांस मदिरादि त्याग करके शुद्ध आचारवान हो, २-आसन वसन पवित्र हो, ३-और स्नानादि से शरीर की शुद्धि हो। इसी बात को श्रीसोमदेवाचार्य ने 'नीतिवाक्यामृत' में इस प्रकार कहा है—

"आचारानवद्यत्वशुचिरुपस्कारः शरीरशुद्धिश्च करोति शूद्रानपि देवद्विजातितपस्विपरिकर्मसु योग्यान्।"

इस प्रकार तीन तरह की शुद्धियां होने पर शूद्र भी साधु होने तक के योग्य हो जाताहै। आशाधरजी ने लिखा है कि—

"जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्मभाक्।"

अर्थात् जाति से हीन या नीच होने पर भी कालादिक लब्धि समयानुकूलता मिलने पर वह जैनधर्म का अधिकारी होजाता है। समन्तभद्राचार्य के कथनानुसार तो सम्यग्दृष्टि चाण्डाल भी देव

माना गया है, पूज्य माना गया है और गणधरादि द्वारा प्रशंसनीय कहा गया है। यथा—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम् ॥२८॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

शूद्रों की तो बात ही क्या है जैन शास्त्रों में महा म्लेच्छों तक को मुनि होने का अधिकार दिया गया। जो मुनि हो सकता है उसके फिर कौन से अधिकार बाकी रह सकते हैं? लब्धिसार में म्लेच्छ को भी मुनि होने का विधान इस प्रकार किया है—

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छ अज्जेय।
कममो अवरं अवरं वरं वरं होदि संख वा ॥१९३॥

अर्थ—प्रतिपात स्थानों में से प्रथम आर्यखण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से संयमी हुआ, उसके जघन्य स्थान है। उसके बाद असंख्यात लोक मात्र षट् स्थान के ऊपर म्लेच्छ खण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से सकल संयमी (मुनि) हुआ, उसका जघन्य स्थान है। उसके ऊपर म्लेच्छ खण्ड का मनुष्य देश संयत से सकल संयमी हुआ, उसका उत्कृष्ट स्थान है। उसके बाद आर्य खण्ड का मनुष्य देश संयत से सकल संयमी हुआ उसका उत्कृष्ट स्थान है।

लब्धिसार की इसी १९३ वीं गाथा की संस्कृत टीका इस प्रकार है—

"म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकितव्यं। दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागताना म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातसम्बधानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा चक्र-

वर्त्यादिपरिणीतानां गर्भपूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छ-व्यपदेशभाजः संयमसंभवात्। तथा जातीयकानां दीक्षा-र्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।"

अर्थात्—कोई यो कह सकता है कि म्लेच्छ भूमिज मनुष्य मुनि कैसे हो सकते है ? यह शंका ठीक नहीं है, कारण कि दिग्विजय के समय चक्रवर्ती के साथ आर्य खण्ड में आये हुये म्लेच्छ राजाओं को संयम की प्राप्ति में कोई विरोध नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि वे म्लेच्छ भूमि से आर्यखण्ड में आकर चक्रवर्ती आदि से संबंधित होकर मुनि बन सकते हैं। दूसरी बात यह है कि चक्रवर्ती के द्वारा विवाही गई म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई संतान माता की अपेक्षा से म्लेच्छ कही जा सकती है, और उस के मुनि होने में किसी भी प्रकार से कोई निषेध नहीं हो सकता।

इसी बात को सिद्धान्तराज जयधवल ग्रंथ में भी इस प्रकार से लिखा है—

"जइ एवं कुदो तत्थ संजमग्गहणसंभवो त्ति णासंकणिज्ज। दिसाविजयपयट्टचक्कवट्टिखंधावारेण सह मज्झिमखंडमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टि [illegible] जादवेवाहियसंबंधाणं संजमपडिवत्तीए [illegible] अहवा तत्तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादि [illegible] मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा [illegible] किंचिद्विप्रतिषिद्धं। तथाजातीयकानां [illegible] भावादिति।" [illegible]

(देखिये [illegible]

इन दीक्षाओं से दो बातों का स्पष्टीकरण होता है। एक तो म्लेच्छ लोग मुनि दीक्षा तक ले सकते हैं और दूसरे म्लेच्छ कन्या से विवाह करने पर भी कोई धर्म कर्म की हानि नहीं हो सकती, प्रत्युत उस म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान भी उतनी ही धर्मादि की अधिकारिणी होती है जितनी कि सजातीय कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान।

प्रवचनसार की जयसेनाचार्य कृत टीका में भी सत् शूद्र को जिन दीक्षा लेने का स्पष्ट विधान है। यथा—

"एवगुणविशिष्ट पुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति। यथायोग्य सच्छूद्राद्यपि"

और भी इसी प्रकार के अनेक कथन जैन शास्त्रों में पाये जाते हैं जो जैनधर्म की उदारता के द्योतक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक दशा में धर्म सेवन करने का अधिकार है। 'हरिवंशपुराण' के २६वें सर्ग के श्लोक १४ से २२ तक का वर्णन देखकर पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि जैनधर्म ने कैसे कैसे अस्पृश्य शूद्र समान व्यक्तियों को जिन मन्दिर में जाकर धर्म कमाने का अधिकार दिया है। वह कथन इस प्रकार है कि वसुदेव अपनी प्रियतमा मदनवेगा के साथ सिद्धकूट चैत्यालय की वंदना करने गये। वहाँ पर चित्र विचित्र वेषधारी लोगों का वेश देखकर कुमार ने रानी मदनवेगा से उन की जाति जानने बाबत कहा। तब मदनवेगा बोली—

मैं इनमें से इन मातंग जाति के विद्याधरों का वर्णन करती हूँ नील मेघ के समान श्याम नीली माला धारण किये मातंगस्तंभ के सहारे बैठे हुये ये मातंग जाति के विद्याधर हैं॥ १५॥ मुर्दों की हड्डियों के भूषणों से युक्त राख के लपेटने से भद मैले स्मशान

आपदामकरो नारी नारी नरकवर्तिनी ।
विनाशकारणं नारी नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥

इस विद्वेष, पक्षपात और नीचता का क्या कोई ठिकाना है ? जिस प्रकार स्वार्थी पुरुष स्त्रियों के निन्दा सूचक श्लोक रच सकते हैं उसी प्रकार स्त्रियां भी यदि विदुषी होकर ग्रंथ रचना करती तो वे भी यों लिख सकती थीं कि—

पुरुषो विपदां खानिः पुमान् नरकपद्धतिः ।
पुरुषः पापानां मूलं पुमान् प्रत्यक्ष राक्षसः ॥

कुछ जैन ग्रन्थकारों ने तो पीछे से न जाने स्त्रियों के प्रति क्या क्या लिख मारा है। कहीं उन्हें विष बेल लिखा है तो कहीं जहरीली नागिन लिख मारा है। कहीं विष बुझी कटारी लिखा है तो कहीं दुर्गुणों की खान लिख दिया है। इस प्रकार लिख लिख कर पक्षपात से प्रज्वलित अपने कलेजों को ठंडा किया है। मानो इसी के उत्तर स्वरूप एक वर्तमान कवि ने बड़ी ही सुन्दर कविता में लिखा है कि—

वीर, बुद्ध अरु राम कृष्ण से अनुपम ज्ञानी ।
तिलक, गोखले, गांधी से अद्भुत गुण खानी ॥
पुरुष जाति है गर्व कर रही जिन के ऊपर ।
नारि जाति थी प्रथम शिक्षिका उनकी भूपर ॥
पकड़ पकड़ उंगली हमने चलना सिखलाया ।
मधुर बोलना और प्रेम करना सिखलाया ॥
राजपूतिनी वेष धार मरना सिखलाया ।
व्याप्त हमारी हुई स्वर्ग अरु भू पर माया ॥
पुरुष वर्ग खेला गोदी में सतत हमारी ।

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामनीमूले का जातिपरिकल्पना॥

अर्थात्—इस अनादि संसार में कामदेव सदा से दुर्निवार चला आ रहा है। तथा कुल का मूल कामनी है। तब इसके आधार पर जाति कल्पना करना कहा तक ठीक है? तात्पर्य यह है कि न जाने कब कौन किस प्रकार से कामदेव की चपेट में आ गया होगा। तब जाति या उसकी उच्चता नीचता का अभिमान करना व्यर्थ है। यही बात गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण के पर्व ७४ में और भी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कही है—

वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात्।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनात्॥४९१॥

अर्थात् इस शरीर में वर्ण या आकार से कुछ भेद दिखाई नहीं देता है। तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में शूद्रों के द्वारा भी गर्भाधान की प्रवृति देखी जाती है। तब कोई भी व्यक्ति अपने उत्तम या उच्च वर्ण का अभिमान कैसे कर सकता है? तात्पर्य यह है कि जो वर्तमान में सदाचारी है वह उच्च है और जो दुराचारी है वह नीच है।

इस प्रकार जाति और वर्ण की कल्पना को महत्व न देकर जैनाचार्यों ने आचरण पर जोर दिया है। जैनधर्म की इस उदारता को ठोकर मार कर जो लोग अन्तर्जातीय विवाह का भी निषेध करते हैं उनकी दयनीय बुद्धि पर विचार न करके जैन समाज को अपना क्षेत्र विस्तृत, उदार एवं अनुकूल बनाना चाहिये।

जैन शास्त्रों को, कथा ग्रंथों को या प्रथमानुयोग को उठाकर देखिये, उनमें आपको पद २ पर वैवाहिक उदारता नजर आयेगी। पहले स्वयम्वर प्रथा चालू थी, उसमें जाति या कुल की परवाह न ‌ ही ध्यान रखा जाता था। जो कन्या किसी भी छोटे

या बड़े कुल वाले को उसके गुण पर मुग्ध होकर विवाह लेती थी उसे कोई बुरा नहीं कहता था। हरिवंश पुराण में इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि—

कन्या वृणीते रुचिरं स्वयंवरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयम्वरे॥११-७१॥

अर्थात्—स्वयम्वरगत कन्या अपने पसन्द वर को स्वीकार करती है, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयम्वर में कुलीनता अकुलीनता का कोई नियम नहीं होता है।

अब विचार करिये, कि जहां कुलीन अकुलीन का विचार न करके इतनी वैवाहिक उदारता बताई गई है वहां अन्तर्जातीय विवाह तो कौनसी बड़ी बात है। इसमें तो एक ही जाति, एक ही धर्म, और एक ही आचार विचार वालोंसे सम्बंध करना है। यह निश्चय रखिये कि जब तक वैवाहिक उदारता पुनः चालू नहीं होगी तबतक जैन समाज की उन्नति होना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है।

जैन शास्त्रों में विजातीय विवाह के प्रमाण।

१—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने ब्राह्मण कन्या नन्दश्रीसे विवाह किया था और उससे अभयकुमार पुत्र उत्पन्न हुआ था। (भवतो विप्रकन्यायां सुतोऽभूदभयाह्वयः) बाद में विजातीय माता पिता से उत्पन्न अभयकुमार मोक्ष गया। (उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक ४२३ से २९ तक)

२—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री धन्यकुमार 'वैश्य' को दी थी। (पुण्यास्रव कथाकोष)

३—राजा जयसेन (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी प्रीतिंकर (वैश्य) को दी थी। इनके ३८ वैश्य पत्नियां थीं और

एक पत्नी राजकुमारी वसुंधरा भी क्षत्रिया थी। फिर भी वे मोक्ष गये। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३८६-४७)

४—कुबेरप्रिय सेठ (वैश्य) ने अपनी पुत्री क्षत्रिय कुमार को दी थी।

५—क्षत्रिय राजा लोकपाल की रानी वैश्य थी।

६—भविष्यदत्त (वैश्य) ने अरिंजय (क्षत्रिय) राजा की पुत्री भविष्यानुरूपासे विवाह किया था तथा हस्तिनापुरके राजा भूपाल की कन्या स्वरूपा (क्षत्रिया) को भी विवाहा था। (पुण्याश्रव कथा)

७—भगवान नेमिनाथ के काका वसुदेव (क्षत्रिय) ने म्लेच्छ कन्या जरासे विवाह किया था। उससे जरत्कुमार उत्पन्न होकर मोक्ष गया था। (हरिवंशपुराण)

८—चारुदत्त (वैश्य) की पुत्री गंधर्वसेना वसुदेव (क्षत्रिय) को विवाही थी। (हरि०)

९—उपाध्याय (ब्राह्मण) सुग्रीव और यशोग्रीव ने भी अपनी दो कन्यायें वसुदेव कुमार (क्षत्रिय) को विवाही थीं। (हरि०)

१०—ब्राह्मण कुलमें क्षत्रिय माता से उत्पन्न हुई कन्या सोमश्रीको वसुदेवने विवाहा था। (हरिवंशपुराण सर्ग २३ श्लोक ४६-५१)

११—सेठ कामदत्त 'वैश्य' ने अपनी पुत्री बंधुमती का विवाह वसुदेव क्षत्रिय से किया था। (हरि०)

१२—महाराजा उपश्रेणिक (क्षत्रिय) ने भील कन्या तिलकवती से विवाह किया और उससे उत्पन्न पुत्र चिलाती राज्याधिकारी हुआ। (श्रेणिकचरित्र)

१३—जयकुमार का सुलोचना से विवाह हुआ था। मगर इन की एक जाति नहीं थी।

१४—जीवंधर कुमार वैश्य पुत्र कहे जाते थे। उन्होंने क्षत्रिय

विद्याधर गरुडवेग की कन्या गधर्वदत्ता को विवाहा था। (उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ३२०-५४)

जीवधरकुमार वैश्य पुत्रके नामसे ही प्रसिद्ध थे। कारण कि वे जन्मकालसे ही वैश्य सेठ गधोत्कटके यहां पले थे और उन्हींके पुत्र कहे जाते थे। विजातीय विवाह के विरोधियों का कहना है कि कुछ भी हो, मगर जीवधरकुमार थे तो क्षत्रिय पुत्र ही। उन पण्डितों की इस बात को मानने में भी हमें कोई एतराज नहीं है। कारण कि फिर भी विजातीय विवाह की सिद्धि होती है। यथा—

जीवधर कुमार क्षत्रिय थे, उनने वैश्रवणदत्त वैश्य की पुत्री सुरमजरी से विवाह किया था। (उत्तर० पर्व ७५ श्लोक ३४६ और ३७२) इसी प्रकार कुमारदत्त वैश्य की कन्या गुणमाला का भी जीवधर स्वामी के साथ विवाह हुआ था (उत्तर० पर्व ७५) इसके अतिरिक्त जीवधर ने धनपति (क्षत्रिय) राजा की कन्या पद्मोत्तमा को विवाहा था। सागरदत्त सेठ वैश्य की लड़की विमला से विवाह किया था। (उत्तर० पर्व ७५ श्लोक ५८७) तात्पर्य यह है कि जीवधरको क्षत्रिय मानिये या वैश्य, दोनों हालत में उनका विजातीय विवाह होना सिद्ध है। फिर भी वे मोक्ष गये हैं।

१५—शालिभद्र सेठ ने विदेशमें जाकर अनेक विदेशीय एवं विजातीय कन्याओं से विवाह किया था।

१६—अग्निभूत स्वयं ब्राह्मण था, उसकी एक स्त्री ब्राह्मणी थी और एक वैश्य थी। यथा —विप्रस्तत्राग्निभूताख्यस्तस्यैका ब्राह्मणी प्रिया। परा वैश्यसुता, सूनुर्ब्राह्मण्यां शिवभूतिभाक्॥ दुहिता चित्रसेनाख्या विट्सुतायामजायत॥

(उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७१-७२)

१७—अग्निभूतकी वैश्य पत्नीसे चित्रसेना कन्या हुई और वह

देवशर्मा ब्राह्मणको विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७३)

१८—तद्भव मोक्षगामी महाराजा भरतने ३२ हजार म्लेच्छ कन्याओंसे विवाह किया था। मगर इससे उनका धर्म न हुआ था। जिन म्लेच्छ कन्याओंको भरत ने विवाहा था वे म्लेच्छ धर्म कर्म विहीन थे। यथा—

> इत्युपायैरुपायज्ञ साधयन्म्लेच्छभूभुजः ।
> तेभ्यः कन्यादिरत्नानि प्रभोर्भोग्यान्युपाहरत् ॥१४१॥
> धर्मकर्मबहिर्भूता इत्यमी म्लेच्छका मताः ॥१४२॥
>
> —आदिपुराण पर्व ३१।

पाठको ! विचार तो करिये। इन धर्म-कर्म विहीन म्लेच्छों से अपनी परस्परकी उपजातियां कुछ गई बीती तो नहीं हैं। तब फिर कमसे कम उपजातियोंमें परस्पर विवाह सम्बन्ध क्यों नहीं चालू कर देना चाहिये ?

१९—श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपने भाई गजकुमारका विवाह क्षत्रिय कन्याओंके अतिरिक्त सोमशर्मा ब्राह्मणकी पुत्री सोमासे भी किया था। (हरिवंशपुराण ब० जिनदास ३४-२६ तथा हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत)

२०—मदनवेगा 'गौरिक' जातिकी थी। वसुदेवजीकी 'गौरिक' जाति नहीं थी। फिर भी इन दोनों का विवाह हुआ था। यह अन्तर्जातीय विवाह का अच्छा उदाहरण है। (हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत)

२१—सिंहक नाम के वैश्य का विवाह एक कौशिक वंशीय क्षत्रिय कन्यासे हुआ था।

२२—जीवंधर कुमार वैश्य थे, फिर भी राजा गयेन्द्र (क्षत्रिय)

की कन्या रत्नवतीसे विवाह किया। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६४६ ५१)

२३—राजा धनपति (क्षत्रिय) की कन्या पद्माको जीवधर कुमार [वैश्य] ने विवाहा था। (क्षत्रचूडामणि लम्ब ५ श्लोक ४२ ४६)

२४—भगवान शान्तिनाथ (चक्रवर्ती) सोलहवें तीर्थंकर हुये हैं। उनकी कई हजार पत्नियां तो म्लेच्छ कन्यायें थी। (शान्तिनाथपुराण)

२५—गोपेन्द्र ग्वालाकी कन्या सेठ गन्धोत्कट (वैश्य) के पुत्र नन्दा के साथ विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३००)

२६—नागकुमारने तो वेश्या पुत्रियोंसे भी विवाह किया था। फिर भी उनने दिगम्बर मुनिकी दीक्षा ग्रहण की थी। (नागकुमार चरित्र) इतना होनेपर भी वे जैनियोंके पूज्य रह सके। किन्तु दिगम्बर जैनोंकी वैश्य जातिमें ही परस्पर अन्तर्जातीय सम्बन्ध करनेमें जिन्हें सज्जातित्वका नाश और धर्मका अधिकारीपना दिखता है उनकी विचित्र बुद्धिपर दया आये बिना नहीं रहती है। इन शास्त्रीय उदाहरणोंसे विजातीय विवाहके विरोधियोंको अपनी आंखें खोलनी चाहिये।

जैन शास्त्रोंमें जब इस प्रकारके सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं जिनमें विवाह सम्बन्धके लिये किसी वर्ण जाति या धर्म तक का विचार नहीं किया गया है और ऐसे विवाह करनेवाले स्वर्ग, मुक्ति और सद्गतिको प्राप्त हुये हैं तब एक ही वर्ण एक ही धर्म और एक ही प्रकारके जैनियोंमें पारस्परिक सम्बन्ध (अन्तर्जातीय विवाह) करनेमें कौनसी हानि है, यह समझमें नहीं आता।

इन शास्त्रीय प्रमाणोंके अतिरिक्त ऐसे ही अनेक ऐतिहासिक प्रमाण भी मिलते हैं। यथा—

१—सम्राट चन्द्रगुप्तने म्लेच्छदेशके (म्लेच्छ) राजा सैल्यूकस की कन्यासे विवाह किया था। और फिर भद्रबाहु स्वामीसे निकट दिगम्बर मुनिदीक्षा लेली थी।

२—आबू मन्दिरके निर्माता तेजपाल प्राग्वाट (पोरवाल) जाति के थे, और उनकी पत्नी मोढ जाति की थी। फिर भी वे बड़े धर्मात्मा थे। २१ हजार श्वेताम्बरों और ३ सौ दिगम्बरों ने मिल कर उन्हें 'संघपति' पदसे विभूषित किया था। यह सम्वत् १२२० की बात है। तेजपालकी विजातीय पत्नी था, फिर भी वह धर्मपत्नीके पदपर आरूढ था। इस सम्बन्ध में आबूके जैन मन्दिरमें सम्वत् १२६७ का जो शिलालेख मिला है वह इस प्रकार है—

"ॐ सम्वत् १२९७ वर्षे वैशाखसुदी १४ गुरौ प्राग्वाटज्ञातीय चण्ड प्रचंड प्रसाद् महं श्री सोमान्वये महं श्री असराज सुत महं श्री तेजपालने श्रीमत्पत्तनवास्तव्य मोढ् ज्ञातीय ठ० आल्हणसुत ठ० आससुताया ०५५।०।५ मता: महं श्रीते भार्या महं श्रीमुहणदे यई...

प्रायश्चित्त मार्ग।

यह कितने खेद का विषय है कि हमारी पंचायतें शास्त्रीय आज्ञा का विचार न करके और अपने निर्णय के परिणाम को न सोचकर मात्र पक्षपात, रूढ़ि या अभिमान से वशीभूत होकर जरा जरा से दोषों पर अपने जाति भाइयों को बहिष्कृत कर देती हैं और उनका मन्दिर तक बन्द करके धर्म कार्य से रोक देती हैं। उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि किसी का भी मन्दिर बन्द करने से या दर्शन रोकने से या पूजा कार्य करने से भयङ्कर पाप का बंध होता है। यथा —

> खयकुट्ठमूलमूलो लोय भगन्दरजलोदरक्खिसिरो।
> सीदुण्हवाहराई पूजादाणन्तरायकम्मफलं ॥३३॥
>
> —रयणसार

अर्थात्—किसी के पूजा और दान कार्य में अन्तराय करने से (रोकने से) जन्म जन्मान्तर में क्षय, कुष्ठ, शूल, रक्तविकार, भगंदर, जलोदर, नेत्र पीड़ा, शिरोवेदना, आदि रोग तथा शीत उष्ण के आताप और कुयोनियों में परिभ्रमण करना पड़ता है।

इस से स्पष्ट सिद्ध है कि हमारी पंचायतें किसी का मन्दिर बन्द करके उसे दर्शन पूजा से रोक कर घोर पाप का बंध करती हैं। किसी शास्त्र में मन्दिर बन्द करने की आज्ञा नहीं है। हां, अन्य अनेक प्रायश्चित्त बताये गये हैं। उनका उपयोग करना चाहिये। घोर से घोर पाप का प्रायश्चित्त है ... जैनधर्म की ... ही इसी में है कि वह ...

होने वाले पाच महा पातकों का निरूपण इस प्रकार है —

पएणां स्याच्छ्रावकाणातु पंचपातकसन्निधौ ।
महामहो जिनेन्द्राणा विशेषेण विशोधनम् ॥१३६॥
—प्रायश्चित्तचूलिका ।

अर्थात्—श्रावको को मुनियो के प्रायश्चित्त से चतुर्थांश प्राय श्चित्त तो दिया ही जाता है (ऋपीणा प्रायश्चित्तस्य चतुर्थभाग श्रावकस्य दातव्य) किन्तु इसके अतिरिक्त छह जघन्य श्रावकों का प्रायश्चित्त और भी विशेष है । सो कहते है, गौवध, स्त्री हत्या, बालघात, श्रावक विनाश और ऋषि विघात ऐसे पाच पापों के बन जाने पर जघन्य श्रावकों के लिये जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करना विशेष प्रायश्चित्त है ।

इस से सिद्ध है कि हत्यारे से हत्यारे श्रावक की भी शुद्धि हो सकती है। और उस शुद्धि मे जिनपूजा करना विशेष प्रायश्चित है। किन्तु हमारी समाज के अत्याचारी दण्ड विधान से मालूम होगा कि पंचरान जरा जरा से अपराधो पर जैनो को समाज से मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देते हैं और उन्हें जिनपूजा तो क्या जिनदर्शन तक का अधिकार नहीं रहता है।

हमारा शास्त्रीय प्रायश्चित्त विधान तो बहुत ही उदारतापूर्वक किया गया है। किन्तु शास्त्रीय आज्ञा का विचार न करके आज समाज मे मनमानी हो रही है। यदि शास्त्रीय आज्ञाओं को भली भाति देखें तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक प्रकार के पाप का प्रायश्चित्त होता है। प्रायश्चित्तचूलिका के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं —

आदावंते च पष्ठ स्यात् क्षमणान्येकविंशति ।
प्रमादाद्गोवधे शुद्धिः कर्तव्या शल्यवर्जितैः॥१४०॥

अर्थ—माया मिथ्या और निदान इन तीनों शल्यों से रहित होकर उक्त छह श्रावक की प्रमाद से या कषाय से गौ का वध हो जाने पर आदि में और अन्त में पञ्चोपवास तथा मध्य में २१ उपवास करना चाहिये।

मौनीः पानमाम्नात पाणिपात्रे च पारणं।
प्रत्याख्यान समादाय कर्त्तव्यो नियमः पुनः ॥१४१॥

अर्थ—और पारणा के दिन पाणिपात्र में काञ्जिकपान करना चाहिये। तथा चार प्रकार के आहार की छुट्टी होकर फिर श्रावक प्रतिक्रमण आदि नियम से करे।

त्रिसन्ध्य नियमस्यान्ते कुर्यात् प्राणशतत्रयं।
रात्रौ च प्रतिमा तिष्ठन्निर्जितेन्द्रियसंहतिः ॥ १४२ ॥

अर्थ—तीनों समय सामायिक करे तीन सौ उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे और इन्द्रियों को वश में करता हुआ रात्रि में भी प्रतिमा रूप तिष्ठकर कायोत्सर्ग करे।

द्विगुणं द्विगुणं तस्मात् स्त्रीबालपुरुषे हतौ।
सदृष्टिश्रावकाणां द्विगुणं द्विगुणं ततः ॥१४३॥

अर्थ—स्त्री, बालक और मनुष्य के मारने पर गौवध प्रायश्चित्त से दूना प्रायश्चित्त है। और सम्यग्दृष्टि श्रावक तथा अणुव्रती का प्रायश्चित्त क्रम से भी दूना है।

इतना उदारता पूर्ण दण्ड विधान होने पर भी वर्तमान पंचायती शासन बहुत ही अनुदार, कठोर एवं निर्दयी बन गया है। मनुष्यघात की बात ही दूर रही मगर यदि किसी से अज्ञान दशामें भी चिड़िया का अण्डा तक मर जाय तो उसे जातिसे खारिज कर देते हैं और मन्दिर में आने तक का मनाई करदी जाती है। इसके

उदाहरण आगे के प्रकरण में देखिये।

जिस प्रकार जैन शास्त्रों में हिंसा का दण्ड विधान है उसी प्रकार पांचों पापों का तथा अन्य छोटे बड़े सभी अपराधों का दण्ड विधान किया गया है। जैसे व्यभिचार का दण्ड विधान इस प्रकार बताया है —

सुतामातृभगिन्यादिचाण्डालीरभिगम्य च ।
अश्नवीतोपवासाना द्वात्रिंशतमसंशय ॥ १८० ॥

अर्थ—पुत्री, माता, बहिन आदि तथा चाण्डाली आदि के साथ संयोग करने वाले नीच व्यक्ति को ३२ उपवास प्रायश्चित्त है।

किन्तु हम देखते हैं कि इतना निकृष्ट [illegible] नहीं। किन्तु बहुत दूर भी अनाचार यदि स्त्री से हो जाय तो उसे सदा के लिये बहिष्कृत कर दिया जाता है। यही कारण है कि [illegible] जैनसमाजमे हजारों विनैकावार (दस्से [illegible]) [illegible] रह कर मारे मारे फिरते हैं। क्या उन्हें शास्त्र के अनुसार [illegible] प्रायश्चित्त देकर शुद्ध नहीं किया जा सकता?

हमारे आचार्यों ने [illegible] आज्ञा बताई है कि किसी एक अपराध के कारण बहिष्कार नहीं करना चाहिये। श्री सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक चम्पू में लिखा है —

नवैः संदिग्धनिर्वाहैर्विदध्याद्गणवर्धनम् ।
एकदोषकृते त्याज्यः प्राप्ततत्त्वः कथं न [illegible]

ऐसे भी [illegible] मनुष्यों से जाति की [illegible]
जो संदिग्ध [illegible] है। अर्थात् जिनके [illegible]
कि व जाति या आचार [illegible]
दोष के कारण [illegible]

सकता है ? अर्थात् उसका बहिष्कार नहीं करना चाहिये।

उपेक्षाया तु जायेत तत्त्वाद्दूरतरो नरः ।
ततस्तस्य भवो दीर्घः समयोऽपि च हीयते ॥

अर्थात्—जाति बहिष्कार करने पर मनुष्य तत्त्व से—सिद्धान्त से दूर हो जाता है। और इसलिये उसका ससार बढ़ता रहता है तथा धर्म की भी हानि होती है।

इस प्रकार जाति बहिष्कार को समाज तथा धर्म की हानि करने वाला बताया है। इस ओर पचायतों को दण्ड विधान मे सुधार करना चाहिये। तभी पचायती सत्ता कायम रहेगी और तभी धर्म तथा समाज की रक्षा होगी। राजा महाबल की कथा से मालूम होता है कि कैसी भी पतित स्थिति म पहुँचने पर भी मनुष्य सदा के लिये पतित या धर्म का अनधिकारी नहीं हो जाता किन्तु उसे बाद मे उतना ही धर्माधिकार रहता है जितना कि किसी धर्मात्मा और शुद्ध कहे जाने वाले श्रावक को। उस कथा का भाव यह है कि—

राजपुत्र महाबल ने कनकलता नाम की राजपुत्री से सभोग किया। यह बात सर्वत्र फैल गई। फिर भी उन दोनो ने मिलकर मुनि गुप्तनामक मुनिराज को आहार दिया और फिर वे दोनो दूसरे भव म राजकुमार राजकुमारी हुये। यह कथा उत्तरपुराण पर्व ७५ मे देखिये—

बहिस्थित कुमारोऽसौ कन्यायामतिशक्तिमान् ।
तयोर्योगोऽभवत्कामास्थामसहमानयो ॥ ८९ ॥
मुनिगुप्ताभिध वीक्ष्य भक्त्या भिक्षागवेषिण ।
प्रत्युत्थाय परीत्याभि नत्वाभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ९० ॥

स्वोपयोगनिमित्तानि तानि खाद्यानि मोदतः ।
स्वादूनि लड्डुकादीनि दत्वा तस्मै तपोभृते ॥ ६१ ॥
ततमेतं जिनोद्दिष्टमदृष्टं स्पष्टमापतुः ।

इस कथा भाग से यह स्पष्ट सिद्ध है कि इतने अनाचारी लोग भी मुनिदान देकर पुण्य सपादन कर सकते हैं। यदि कोई यों कुतर्क करे कि मुनि महाराज को उनके पतन की खबर नहीं थी, सो भी ठीक नहीं है। कारण कि यदि उनकी ऐसी स्थिति में आहार देना अयोग्य होता तो वे पापबन्ध करते किन्तु उनने तो आहार देकर नौ प्रकार का पुण्य सपादन किया था। और दुर्गति में न जाकर स्वर्ग में उत्पन्न हुये। कहा तो यह उदारता और कहां आजके अविवेकी पक्षाध लोग शुद्धलोहडसाजन भाइयों के हाथ का आहार लेना अनुचित बतलाते हैं और कुछ पक्षपाती मुनि ऐसी प्रतिज्ञायें तक लिवाते हैं! इस मूढता का क्या कोई ठिकाना है?

कोई यह कुतर्क उठाते हैं कि प्रायश्चित्त विधान तो पुरुषों को लक्ष करके ही किया गया है, स्त्रियों के लिये तो ऐसा कोई विधान है ही नहीं। तो वे भूलते हैं। कारण कि कई जगह प्राय पुरुषों को लक्ष रख कर ही कथन किया जाता है किन्तु वही कथन स्त्रियों के लिये भी लागू होजाता है। जैसे—

(१) पचाणुव्रतों में चौथा अणुव्रत 'स्वदार सतोष' कहा है। यह पुरुषों को लक्ष करके है। कारण कि स्वदार (स्वस्त्री) सतोषपना पुरुष के ही हो सकता है। फिर भी स्त्रियों के लिये इसे 'स्वपुरुष सतोष' के रूपमें मान लिया जाता है।

(२) सात व्यसनों में 'परस्त्री सेवन' और 'वेश्यागमन' भी

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह जातियां तो वास्तव में आचरण पर ही आधार रखती हैं। वैसे सचमुच में तो एक मनुष्य जाति ही है। इससे सिद्ध है कि कोई एक जाति का पुरुष दूसरी जाति के आचरण करने पर उसमें पहुंच सकता है। यदि इन जातियों में वास्तविक भेद माना जाय तो आचार्य कहते हैं कि—

भेदे जायते विप्राणां क्षत्रियो न कथंचन।
शालिजातौ मया दृष्टः कोद्रवस्य न संभवः॥

अर्थात्—यदि इन जातियों का भेद वास्तविक होता तो एक ब्राह्मणीसे कभी क्षत्रिय पुत्र पैदा नहीं होना चाहिये था (किन्तु होता है) क्योंकि चावलों की जाति में मैंने कभी कोदों की उत्पत्ति होते नहीं देखा है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि आचार्य महाराज जातियों को परम्परागत स्थायी नहीं मानते हैं। और ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्रियसंतान होना स्वीकार करते हैं। फिरभी समझ में नहीं आता कि हमारे आधुनिक स्थितिपालक पण्डित लोग जातियों को अजर अमर किस आधार पर मान रहे हैं! और असवर्ण विवाह का निषेध कैसे करते हैं! जहां आचार्य महाराज ब्राह्मणीके गर्भसे क्षत्रिय संतान का होना मानते हैं वहां हमारे पण्डित लोग उसे धर्म का अनधिकारी बताते हैं और कहते हैं कि उसकी पिण्ड शुद्धि नहीं रहेगी। इस प्रकार पिण्ड शुद्धि को धर्म से बढ़कर मानने वालोंके लिये श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है —

और न ऊँची जाति का कहलाने से ही कोई बड़ा हो जाता है। क्योंकि गुणहीन की कौन वंदना करेगा? गुणों के बिना कोई श्रावक या मुनि भी नहीं कहा जासकता। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि गुणों के आगे जाति या कुल की कोई कीमत नहीं है। अकुलीन और नीच जाति के कहे जानेवाले अनेक गुणवान महापुरुष वंदनीय हो गये हैं और हो सकते हैं जब कि बड़ी जाति और बड़े कुलके कहे जाने वाले अनेक गोमुखव्याघ्र नीच से नीच माने गये हैं। इसलिये जाति मद को छोड़कर गुणों की पूजा करना चाहिये।

अजैनों को जैन दीक्षा।

जैन धर्म की एक विशेष उदारता यह है कि उसमें दूसरे धर्मावलम्बियों को दीक्षित करके समान अधिकार दिये जाते हैं। आदिपुराण के पर्व ३९ में श्लोक ६० से ७१ तक देखने से यह उदारता भली भांति मालूम हो जायगी। इस प्रकरण में स्पष्ट कहा है कि "विधिवत्सोऽपि तं लब्ध्वा याति तत्समकक्षताम्॥" इसी विषय को टीकाकार पं० दौलतरामजी ने इस प्रकार लिखा है— "यह भव्य पुरुष जो व्रत के धारक उत्तम श्रावक हैं, तिनसूं कन्या प्रदानादि सम्बन्ध की इच्छा जाके सो चार श्रावक बड़ी क्रिया के धारक तिनकूं बुलाय कर यह कहै—गुरु के अनुग्रह तें अयोनिज स्वयं जन्म पाया, आप सारिखी क्रियाओं का आचरण करे है आप, आप मोहि समान करो। ते श्रावक वाकी प्रशंसा करि वर्ण लाभ क्रिया द्वारा ताहि युक्त करें, पुन पुत्री का सम्बन्ध वासूं करें।" इत्यादि।

अजैनों को जैन बनाकर उनकी प्रतिष्ठा किये जाने के सैकड़ों

उदाहरण हमारे जैन शास्त्रों में मिलते हैं। यथा—

(१) गौतम गणधर मूल में ब्राह्मण थे। बाद में वे महावीर स्वामी के समवशरण में जाकर जैन हुये। मुनि हुये। जैनों के गुरु हुये। और मोक्ष गये। (महावीर चरित्र)

(२) राजा श्रेणिक बौद्ध थे, फिर भी जैन कन्या चेलना से विवाह किया। बाद में जैन होकर वे वीर भगवान के समवशरण में मुख्य श्रोता हुये। उनके साथ न तो किसी ने खान पान का परहेज रक्खा और न जाति से बन्द किया। किन्तु प्रतिष्ठा या पूज्यत्व की दृष्टि से देखा। (श्रेणिक चरित्र)

(३) समुद्रदत्त अजैन थे। उनके पुत्र ने जैन होकर एक जैन कन्या से विवाह किया। (आराधना कथाकोश भाग कथा नं० ७८)

(४) नागदत्त सेठ पुत्र सहित समाधिगुप्त मुनि के पास जैन बन गया। तब उसके पुत्र के साथ जिनदत्त (जैन) ने अपनी पुत्री विवाह दी। नागदत्त तथा पुत्र और पुत्रवधू आदि सब जिन पूजादि करते थे। (आराधना कथा नं० १०६) इससे सिद्ध है कि अजैन के जैन हो जाने पर उससे रोटी बेटी व्यवहार हो सकता है।

(५) जब भारत पर सिकन्दर बादशाह ने चढ़ाई की उस समय एक जैन मुनि उनके साथ यूनान गये। वहां उनने नये जैनी बनाये और उन नव दीक्षित जैनों के हाथ का आहार ग्रहण किया। (जैन सिद्धान्त भास्कर ७–३ पृ० ६)

(६) अफरीका के अबीसीनिया में दि० जैन मुनि पहुंचे थे। वहां भी उनने विदेशियों के यहां आहार लिया था। (भगवान महावीर और म० बुद्ध पृ० ६६)

(७) अफगान और अरब आदि देशों में जैन प्रचारक पहुंचे थे और वहां के निवासियों को (जिन्हें म्लेच्छ समझा जाता है)

जैनधर्म मे दीक्षित किया था। और वे इन नव दीक्षित जैनों के यहा आहार करते थे। (इन्डियन सेक्ट० आफ दी जैन्स पृ० ४ फुट नोट)

(८) जब यूनानवासी भारत के सीमा प्रांत पर बस गये थे तब उनमे से अनेकों को जैनधर्म मे दीक्षित किया गया था। (भगवान महावीर पृ० २४३)

(९) लोहाचार्य ने अगरोहे के अजैनों को जैन बनाकर सबका परस्पर खान पान एक करा दिया था। (अग्रवाल इतिहास)

(१०) जिनसेनाचार्य के उपदेश से ८२ गोत्र राजपूतों के और २ सुनारों के जैनधर्म मे दीक्षित किये गये। उन्हीं से ८४ गोत्र खण्डेलवालोंके हुये। क्षत्रिय और सुनार जैन खडेल वालो मे रोटी बेटी व्यवहार चालू हो गया और अभी भी है। उन्हीं ग्रामो पर से ८४ गोत्र बने थे। (विश्वकोष भा० ५ पृ० ७१८)

(११) खडेलवालोंके पूर्वजों ने अजैन दीवानगिरों को शुद्ध कर जैन बनाया और उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार चालू कर दिया।

(१२) जैन समाज मे प्रसिद्ध कवि जिनवरुश नव दीक्षित जैन थे। वे जैनधर्म के पक्के श्रद्धानी थे। इनके पद प्रसिद्ध हैं। और वे पद जैन मन्दिरों में शास्त्र सभा मे भक्ति पूर्वक गाये जाते हैं। जैन विद्वानो ने मुसलमान जिनवरश को श्रावकधर्म की दीक्षा दी थी। और साथ जलपान तक अच्छे २ जैन करते थे।

(१३) सन् १८७६ तक अजैनों को शुद्ध करके जैन बनाने की प्रथा चालू थी। यह बात बुलहर सा० ने अपनी 'दी इण्डियन सेक्ट आफ दी जैन्स' पुस्तक के पृ० ३ पर लिखी है। उनने लिखा है कि जैनधर्म का उपदेश आर्य अनार्य पशु पक्षी सबके लिये हुआ था। और इस नियम के अनुसार आज भी नीच .

मार्यो तक को जैनी बनाना धर्म नहीं है। मुसलमान जो म्लेच्छ समझे जाते हैं वह भी जैन जातियों में मिला लिये जाते थे।

(१४) पं० दौलतरामजी ने आदिपुराण की भाषा वचनिका में स्पष्ट लिखा है कि "व नव दीक्षित तुम सरीखे सम्यग्दृष्टीन के अलाभ विषै मिथ्यादृष्टीन सों सम्बन्ध होय है इस तरह कहैं और वे श्रावक इसरी वर्ण लाभ क्रिया से युक्त करें अर्थात् णमोकार मंत्र पढ़ाकर आज्ञा करें कि पुत्र पुत्रीन का सम्बन्ध यामूं किया जाय — इसी आज्ञा तें वर्णलाभ क्रिया को पायकर उनके समान होय।" इससे स्पष्ट सिद्ध है कि अजैनों को जैन बनाकर उनके साथ रोटी व्यवहार करना शास्त्र सम्मत है। फिर आज जो जैनी जैनों के साथ रोटी बेटी व्यवहार करना अनुचित कहते हैं उन्हें शास्त्राज्ञा पालक कैसे कहा जा सकता है।

(१५) पात्रकेशरी अजैन ब्राह्मण थे। बाद में वे जैन होकर दिगम्बर मुनि हुये। जैना ने उन्हें पूजा और गुरु माना। (आराधना कथाकोश कथा नं० १)

(१६) अकलंकस्वामी की कथा से मालूम होता है कि हिमशीतल राजा अपनी प्रजा सहित जैनधर्मी होगया था। (कथा नं० २)

(१७) चोरों का सरदार सूरदत्त मुनि होकर मोक्ष गया। और जैनों का पूज्य परमात्मा बन गया। (कथा नं० १४)

(१८) जैन सम्राट चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस की कन्या से विवाह किया था। यह इतिहास सिद्ध है। फिर भी जाति [illegible] कोई बाधा नहीं आई।

से प्रगट है कि उस समय 'नृतक' लोग तक जैनमन्दिर और जैन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाते थे।

(२१) वज्रयश नामक मुनि पण-स्कैथियन थे। पणिक मुनि भी इसी जाति के होना संभव है।

(२२) भारत के मूल निवासी गोंड और द्रविड़ जातियों में भी जैनधर्म का प्रचार हुवा था इनमें की असभ्य जातियां शुद्ध करके जैन बनाली गई थीं। भार लोग जो पहले पहाड़ों में रहते थे और मांस भक्षी थे वह भी जैनधर्म में दीक्षित किये गये थे, (ऑन दी ओरिजिनल इन्हैबीटेन्टस आफ भारतवर्ष पृ० ४७) एक समय यह लोग बुन्देलखण्ड के राज्याधिकारी होगये थे।

(२३) वल्लुवर नामक जाति भी जैन धर्मानुयायी थी। प्रसिद्ध तामिल ग्रंथ "कुरल" के कर्ता वल्लुवर जाति के थे और जैन थे। ये जातिवाह्य समझे जाते थे।

(२४) कुरुम्ब लोग भारत के बहुत प्राचीन असभ्य हैं। यह पहले जंगलों में मारे मारे फिरते थे। और हिरण आदि का शिकार करके अपना पेट भरा करते थे। फिर ये ग्रामों में बसने लगे और खेती करने लगे। परन्तु इनका मुख्य कर्म भेड़ों को चराना रहा है। आज भी अधिकांश कुरुम्ब गड़रिया ही हैं। पहिले इनका कोई धर्म नहीं था। पर जैन मुनि ने उन सबको जैन बना लिया था। इनका मुख्य नगर 'पुलाल' था। और इनने अपना एक राजा भी चुन लिया था। इस राजा ने एक जैनमुनिकी स्मृति में एक 'जैन बस्ती' (जैनमन्दिर) भी पुलाल में बनवाया था। जो आजभी वहां ध्वंशावशेष मौजूद है। इसके अतिरिक्त औरभी [illegible] जैन मन्दिर वहां मौजूद हैं [illegible] रा मन्राम से करीब [illegible] मील की दूरी पर हैं। अभी [illegible]

(२५) गुजरात के देवपुर में दिगम्बर मुनि जीवनन्दि संघ सहित गये थे। वहां जैन नहीं थे इसलिये वे शिवालय में ठहरे और नये जैन बनाकर उनसे आहार लिया।

इन उदाहरणों से ज्ञात होगा कि जैनधर्म कितना उदार है। इसने कैसी कैसी जघन्य जातियों तक को अपना कर जिनधर्मी बनाया, कैसे कैसे पतितों को पावन किया और कैसे कैसे दुष्टात्माओं को उपदेश देकर जैन मार्ग पर लगा दिया। सच्चा मानव धर्म तो यही है। जिस धर्म में ऐसे लोगों को पचाने की शक्ति नहीं है उस मुर्दा धर्म से लाभ ही क्या है? दुःख है कि वर्तमान जैन समाज अपने उदार धर्म को मुर्दा बनाती जा रही है। क्या इन उदाहरणों से समाज की आखें खुलेंगी? और वह अपने कर्त्तव्य को समझेगी?

कथाग्रंथों में तो ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनसे जैन धर्म की उदारता का पता भली भांति लगाया जा सकता है। कुछ पुण्यास्रव कथाकोश से प्रगट किये जाते हैं।

(१) पूर्णभद्र और मानभद्र ने एक कूकरी और एक चाण्डाल को उपदेश देकर सन्यास युक्त पंचाणुव्रत ग्रहण कराये। चाण्डाल सन्यासमरण करके सोलवें स्वर्ग में गया और नन्दीश्वर नामक महर्द्धिक देव हुआ और कूकरी मरकर राजपुत्री हुई। (कथा नं० ६-७)

(२) दो माली की कन्यायें प्रतिदिन जिन मंदिर की देहली पर फूल चढ़ाती थीं उसके पुण्य से वे देवियां हुईं।

(३) अर्जुन चाण्डाल उपसर्ग सहकर और सन्यास ग्रहण कर गुफा में जा बैठा। चाण्डाल होकर भी उसने केवली की वन्दना की थी। पहले वह महान हिंसक था। सन्यास मरण करके वह देव हुआ (कथा नं० ८)

(४) नागदत्ता अजैन थी। उसकी कन्या धनश्री वसुमित्र वैश्य (जैन) को विवाही थी। वसुमित्र ने धनश्री को जैन बना लिया और धनश्री ने अपनी माता को जैन बना लिया। कैसी सुन्दर उदारता है, कैसा अनुकरणीय उद्धारक मार्ग है?

पूर्वाचार्य अजैनों को जैन दीक्षा देकर धर्म प्रचार का कार्य करते थे। किन्तु आजकल हमारे साधुओं में इतनी उदारता नहीं है। मूलाचार में आचार्य के लक्षण बताते हुये लिखा है कि 'संगहणुग्गह कुसलो' अर्थात् आचार्य का कर्तव्य है कि वह नये मुमुक्षुओं को जैन दीक्षा देकर उनका संग्रह करने और अनुग्रह करने में कुशल हो। कथा ग्रंथों से ज्ञात होता है कि कई जैन साधु प्रति दिन कुछ न कुछ नये लोगों को जैन बनाते थे। माघ नन्दि आचार्य ५० नये जैन बनाकर ही आहार करते थे। किन्तु खेद का विषय है कि वर्तमान में जैन मुनिराज जैनों का बहिष्कार कराते हैं, अमुक जैन जाति के साथ खान पान नहीं रखना, इत्यादि नियम कराते हैं। और आपस आपस में मुनि लोग एक दूसरे की बुराई करके जुदा जुदा गुट्ट बनाते हैं। इसे देख कर भद्रबाहु चरित्र में वर्णन किये गये चन्द्रगुप्त के १४वें स्वप्न का फल याद आजाता है कि—

रजसाच्छादितरुद्ररत्नराशीरीक्षणतो भृशम्।
करिष्यन्ति मथः स्तेया निर्ग्रन्थ मुनयो मिथः ॥४७॥

अर्थात्—धूलिसे आच्छादित रत्नराशि के देखने से मालूम होता है कि निर्ग्रन्थमुनि भी परस्परमें निन्दा करने लगेंगे। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। यदि अभी भी हमारे साधुगण अपने कर्तव्यका पालन करें तो हजारों नये जैन प्रतिवर्ष बन सकते हैं। जैन धर्म सरीखी उदारता तो अन्य किसी भी धर्म में नहीं है। साधु

कामताप्रसादजी ने अपनी 'विशाल जैनसंघ' नामक पुस्तक में कुछ ऐसे उदाहरण संग्रहीत किये हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि जैनधर्म की पाचनशक्ति कितनी तीव्र है। वह सभी जाति के सभी मानवों को अपने में मिला सकता है। थोड़े से उदाहरण दिये जाते हैं।

संवत् ११७८ में श्री जिनवल्लभ सूरि ने 'पड़िहार' जाति के राजपूत राजा को जैन बना कर महाजन वंश में शामिल किया था। इसका दीवान जो कायस्थ था वह भी जैनी होकर महाजन (श्रेष्ठि वैश्य-श्रावक) हुआ था।

(२) खीची राजपूत जो गाड़ा मारते थे जैनी हुये थे।

(३) जिनभद्रसूरि ने राठौर वंशी राजपूतों को जैनी बनाया था।

(४) स० ११६७ में परमार वंशी क्षत्री भी जैनी हुये थे।

(५) स० ११६६ में जिनदत्तसूरि ने एक यदुवंशी राजा को जैनी बनाया था, जो मांस मदिरा खाता था।

(६) स० ११६८ में जिनवल्लभ सूरि ने सोलंकी राजपूत राजा को जैनी बनाया था।

(७) स० ११६८ में भाटी राजपूत राजा जैनी हुआ था।

(८) स० ११८१ में २४ जातियां चौहानों की जैनी हुई थीं।

(९) स० ११६७ में सोनीगरा जाति का राजपूत राजा जैनधर्म में दीक्षित हुआ था।

(१०) इसके बहुत पहले ओसिया ग्राम के राजपूत राजा अपनी प्रजा सहित जैनी हुये थे। वही लोग 'ओसवाल' के नाम से प्रसिद्ध हुये।

(११) पन्द्रहवीं शताब्दी में चौहान मामतसिंह के वंशजों में एक चन्द्रसिंह हुए, जो जैनधर्म के भक्त [illegible] के वंशज आजकल 'चन्द्रावत' जैन हैं।

(१२) मारवाड के राठौर राना रायपाल से ओसवालों के मुहणोत गोत्र की उत्पत्ति है। उनके मूल पुरुष सतसेन जैन धर्म मे दीक्षित हुये थे। तब ओसवालों ने उनको अपने मे मिला लिया था।

(१३) ओसवालो मे भण्डारी गोत्र है। भण्डारियों के मूल पुरुष नाडोल के चौहान राजा लखनसी थे। यशोधर सूरि ने इनके पुत्र दादराव को सन ६६२ म जैनधर्म की दीक्षा दी थी। तब से यह लोग ओसवालों मे शामिल कर लिये गये।

(१४) बौद्धो के 'मिलिन्द पन्ह' नामक ग्रथसे प्रगट है कि ५०० योद्धा (यूनानियों) ने भगवान महावीरस्वामी की शरण ली थी और उनके राजा मेनेन्डर (मिलिन्द) ने जैनधर्म की दीक्षा ली थी।

(१५) उपाली नामक एक नाई भगवान महावीर स्वामी का अनन्य भक्त था।

(१६) अथर्व वेद से प्रगट है कि अनार्य व्रात्यो को जैनधर्म मे दीक्षित किया गया था।

(१७) हिन्दुओ के 'पद्मपुराण' के प्राचीन उद्धरण मे दयावान चाण्डाल व शूद्र को ब्राह्मणवत् बतलाकर एक दिगम्बर जैन मुनि होना लिखा है।

(१८) पञ्चतन्त्र के मणिभद्र सेठ वाले आख्यान से विदित है कि एक नाई के यहा दिगम्बर जैनमुनि आहार के लिये पहुचे थे

(१९) जिनभूतबलि आचार्य की कृपा से हम आज जिनवाणी के दर्शन कर रहे हैं वे शक जाति के विदेशी राजा नरवाहन या नहपान थे।

(२०) गुरुवर साहब से १५०६ म अहमदाबाद म जैनों ... कुछ मुसलमानों को ... धर्म मे ...

आर्यों से दूषा था और उनने लिखा है कि अभी तक माली छीपी आदि जातियों को जैनधर्म ग्रहण करने का द्वार बन्द नहीं है।

(२१) दक्षिण भारत में एक दिगम्बराचार्य ने कुरुम्ब और भार जैसी असभ्य जातियों को जैनधर्म में दीक्षित किया था। कुरुम्ब लोग शिकारी और मांस भक्षी थे। वही जैन हुए और फिर उनने बड़े बड़े जैन मन्दिर बनवाये थे।

(२२) पणि (पर्णि) जाति के विदेशी व्यापारी ने महावीर स्वामी के निकट मुनि दीक्षा ली और वह अन्त कृत केवली हुआ।

(२३) भविष्यदत्त विदेश। (समुद्र पार की) कन्या को ब्याह कर लाये थे और वह बाद में आर्यिका हो गई थी।

(२४) यति नयनसुखदास कृत 'अठारह नाते की कथा' में जैन दीक्षा की उदारता स्पष्ट प्रगट है। धनपति सेठ मधुसेना वेश्या से फसा था। उससे कुवरदत्त और कुवेरदत्ता नामक दो सन्तानें पैदा हुई। वेश्यागामी व्यभिचारी धनपति सेठ ने मुनि दीक्षा ली और अन्त में कर्म काट मोक्ष गया। कुवेरदत्त और कुवरदत्ता (भाई-बहिन) का आपस में विवाह हो गया। अन्त में विरक्त होकर वेश्यापुत्री कुवेरदत्ता ने क्षुल्लिका की दीक्षा लेली। कुवेरदत्त अपनी माता मधुसेना से फस गया और उससे एक लड़का हुआ। बाद में कुवरदत्त और वेश्या मधुसेना ने मुनिराज के पास दीक्षा ली। इस कथा से स्पष्ट सिद्ध है कि जैनधर्म वेश्याओं को, उनकी सन्तानों को और घोर व्यभिचारियों को भी दीक्षा देकर उन्हें मोक्षगामी बना सकता है।

श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में उदारता के प्रमाण।

श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में जैन धर्म की उदारता के बहुत से प्रबल प्रमाण मिलते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि जैनधर्म वास्तव में मानव मात्रको धर्मधारण करने की आज्ञा देता है। नीच, पापी और अत्याचारियों की शुद्धिका भी उपाय बतलाता है और सबको शरण देता है। श्वे० शास्त्रों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं -

(१) मेहतार्य मुनि चाण्डाल थे। बाद में वे दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

(२) हरिबल जन्म से मच्छीमार था। अन्त में वह मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

(३) अर्जुन माली ने ६ माह तक १ स्त्री और ६ पुरुषों की हत्या की थी। अन्त में भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में उस हत्यारे को शरण मिली। वहां उसने मुनि दीक्षा ली और मोक्ष गया।

(४) आर्द्रिमरसा मुसलमान जैन था। उसके बनाये हुये भजन आज भी गाये जाते हैं।

(५) दुर्गंधा वेश्या पुत्री थी। वही श्रेणिक राजा की पत्नी हुई थी (त्रिषष्टि०)

(६) ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का जीव पूर्व भव में चाण्डाल था उसे एक मुनि ने उपदेश देकर मुनि दीक्षा दी थी। वह मुनि होकर द्वादशांग का ज्ञाता हुआ। (त्रिषष्टि०)

(७) कयवन्ना (कृतपुण्य) सेठ ने वेश्यापुत्री से विवाह किया था। फिर भी उनके धर्मसाधन में कोई बाधा नहीं आई।

(८) इलाती पुत्र ने एक कन्या का मस्तक काट डाला था।

आर्यों से देखा था और उन्होंने लिखा है कि अभी तक माली छीपी आदि जातियों को जैनधर्म ग्रहण करने का द्वार बन्द नहीं है।

(२१) दक्षिण भारत में एक दिगम्बराचार्य ने कुरुम्ब और भार जैसी असभ्य जातियों को जैनधर्म में दीक्षित किया था। कुरुम्ब लोग शिकारी और मांस भक्षी थे। वही जैन हुए और फिर उनने बड़े बड़े जैन मन्दिर बनवाये थे।

(२२) पर्षि (पर्शि) जाति के विदेशी व्यापारी ने महावीर स्वामी के निकट मुनि दीक्षा ली और वह अन्त कृत केवली हुआ।

(२३) भविष्यदत्त विदेशी (समुद्र पार की) कन्या को ब्याह कर लाये थे और वह बाद में आर्यिका हो गई थी।

(२४) यति नयनसुखदास कृत 'अठारह नाते की कथा' में जैन दीक्षा की उदारता स्पष्ट प्रगट है। धनपति सेठ मधुसेना वेश्या से फसा था। उससे कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता नामक दो सन्तानें पैदा हुईं। वेश्यागामी व्यभिचारी धनपति सेठ ने मुनि दीक्षा ली और अन्त में कर्म काट मोक्ष गया। कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता (भाई बहिन) का आपस में विवाह हो गया। अन्त में विरक्त होकर वेश्यापुत्री कुबेरदत्ता ने क्षुल्लिका की दीक्षा लेली। कुबेरदत्त अपनी माता मधुसेना से फस गया और उससे एक लड़का हुआ। बाद में कुबेरदत्त और वेश्या मधुसेना ने मुनिराज के पास दीक्षा ली। इस कथा से स्पष्ट सिद्ध है कि जैनधर्म वेश्याओं को, उनकी सन्तानों को और घोर व्यभिचारियों को भी दीक्षा देकर उन्हें मोक्षगामी बना सकता है।

विजातीय (मोढ जाति में) विवाह किया था। फिर भी उनने सन् १२३० में गिरनार का संघ निकाला। उसमें २१ हजार श्वेताम्बर और ३०० दिगम्बर जैन साथ थे। उसके बाद सन् १२३० में उनने आबू के जगविख्यात मन्दिर बनवाये। क्या आज जैन समाज में इस उदारता का अंश भी बाकी है? आज तो दस्साओं को पूजा से भी रोका जाता है।

(१५) जाति के विषय में स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र आदि का व्यवहार कर्मगत (आचरण से) है। ब्राह्मणत्वादि जन्म से नहीं होता। यथा—

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तियो।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० २५

(१६) जैनधर्म में जाति को प्रधान नहीं माना है। इसी विषय में मुनि श्री 'सन्तबाल' जी ने उत्तराध्ययन की टीका में १२वें अध्याय के प्रारम्भ में विवेचन करते हुये लिखा है कि —

"आत्मविकास में जाति बन्धन नहीं होते हैं। चाण्डाल भी आत्मकल्याण के मार्ग पर चल सकता है। चाण्डाल जाति में उत्पन्न होने वाले का भी हृदय पवित्र हो सकता है। हरिकेश मुनि चाण्डाल कुलोत्पन्न होकर भी गुणों के भण्डार थे। नरेन्द्र देवेन्द्र और महा पुरुषों ने उनकी वन्दना की थी। वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार होती है। उसमें नीच ऊंच के भेदों को स्थान नहीं है। भगवान् महावीर ने जातिवाद का खण्डन करके गुणवाद का प्रसार किया था। धर्मप्रेम भाव का अमृतपान कराया और दीन हीन जीवों का उद्धार किया था।"

...गत कोई विशेषता मालूम नहीं होती किन्तु

थी और उसका नाम 'सुभद्राकुमारी' रक्खा था। अभी वह जैन धर्म का पालन करती है और ग्वालियर स्टेट मे रहती हैं। वह श्वेताम्बर मन्दिरों मे पूजा करती है और जैनों को उनके साथ खान पान मे कोई परहेज नहीं है।

(२३) श्वेताम्बराचार्य नेमिसूरि जी महाराज ने वर्तमान मे कई शूद्रों को मुनि दीक्षा दी है। श्वे० मे अनेक साधु शूद्र जाति के अभी भी हैं।

(२४) श्रीमद राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात) के द्वारा जैन धर्म प्रचार अभी भी हो रहा है। वहा हजारों पाटीदार स्त्री पुरुषों को जैनधर्म की दीक्षा दी गई है। वे सब वहाके जैनमन्दिरों मे भक्ति भाव से पूजा, स्वाध्याय और आत्म ध्यान आदि करते हैं।

इस प्रकार श्वेताम्बर शास्त्रों मे जैनधर्म की उदारता के अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं। उनका उपयोग करना न करना श्रावकों की बुद्धि पर आधार रखता है। मात्र इन २४ उदाहरणों से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म परम उदार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो क्या किन्तु चाण्डाल, अछूत, विदेशी, म्लेच्छ, मुसलमान आदि भी जैनधर्म धारण करके स्वपर कल्याण कर सक्ते हैं। धर्म के लिये जाति का विचार नहीं है। उसके लिये तो आत्मशुद्धि की आवश्यकता है। एक जगह क्या ही अच्छा कहा है कि --

> एहु धम्मु जो आयरइ, बंभणु सुद्दवि कोइ।
> सो सावहु, कि सावयह अण्णु कि सिरि मणि होइ॥
>
> —श्रीदेवसेनाचार्य।

अर्थात्—इस [illegible] जो भी आचरण करता है वह [illegible]ब्राह्मण हो [illegible] कोई भी हो, वही श्रावक (जैन)

आप नहीं छूना चाहते मत छुओ। मगर मन्दिर के आगे मानस्तंभ रखो वह उनकी पूजा करेंगे।" इत्यादि।

यदि इसी प्रकार के उदार विचार हमारे सब साधुओं के हो जावें तो धर्म का उद्धार और समाज का कल्याण होने मे विलम्ब न रहे! मगर खेद है कि कुछ स्वार्थी एवं संकुचित दृष्टि वाले पण्डितमन्यों की चुगल में फस कर हमारा मुनि संघ भी जैनधर्म की उदारता को भूल रहा है।

अब तो इस समय सभा काम युवकों के लिये है। यदि वे जागृत होजावें और अपना कर्तव्य समझने लगें तो भारत मे फिर वही उदार जैनधर्म फैल जावे।

उत्साही युवको! अब जागृत होओ, संगठन बनाओ, धर्म को पहिचानो और वह काम कर दिखाओ जिन्हें भगवान अक-लंकादि महापुरुषों ने किया था। इसके लिये स्वार्थ त्याग करना होगा, पचायतों का झूठा भय छोड़ना होगा, बहिष्कार की तोप को अपनी छाती पर लगाना होगा और अनेक प्रकार से अपमानित होना होगा। जो भाई बहिन नाचिक तनिक से अपराधों के कारण जाति पतित किये गये हैं उन्हें शुद्ध करके अपने गले लगाओ, जो दीन हीन पतित जातिया हैं उन्हें सुसंस्कृत कर के जैनधर्मी बनाओ, स्त्रियों और शूद्रों के अधिकार उन्हें बिना मागे प्रदान करो तथा समझाओ कि तुम्हारा क्या कर्तव्य है। अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार करो और प्रतिज्ञा करो कि हम सजातीय कन्या मिलने पर भी विजातीय विवाह करेंगे। जैनधर्म के उदार सिद्धान्तों का जगत मे प्रचार करो और सब को बतादो कि जैनधर्म जैसी उदारता किसी भी धर्म मे नहीं है। यदि हमारा युवक समुदाय साहस पूर्वक कार्य आरम्भ करदे तो मुझे विश्वास है कि उनके साथ सारी समाज चलने को तैयार हो जायगी। और वह दिन भी दूर नहीं

'उदारता' पर शुभ सम्मतियां।

'जैनधर्म की उदारता' आचार्यों मुनियों, त्यागियों, पण्डितों, बाबुओं और सर्वसाधारण सज्जनों को कितनी प्रिय मालूम हुई है वह नीचे प्रगट की गई कुछ सम्मतियों से स्पष्ट प्रतीत हो जायगा। दूसरे इस पुस्तक की लोकप्रियता का यह प्रबल प्रमाण है कि इसकी हिन्दी में द्वितीयावृत्ति अल्प समयमें ही निकालनी पड़ी है। दिगम्बर जैन युवक सघ सूरतने इसका गुजराती अनुवाद भी प्रगट किया है तथा श्रीधर दाजी धावते मागली ने इसे मराठी भाषा में प्रगट किया है। इस प्रकार तीन भाषाओं में प्रगट होने का अवसर इसी पुस्तक को प्राप्त हुआ है। 'उदारता' पर अनेक सम्मतियां प्राप्त हुई हैं। उनमें से कुछ सम्मतियों का मात्र सार यहां प्रगट किया जाता है।

(१) दिगम्बर जैनाचार्य श्री० सूर्यसागरजी महाराज—

जैनधर्म की उदारता लिखकर प० परमेष्ठीदासजी ने समाज का बहुत ही उपकार किया है। वास्तव में ऐसी पुस्तकों का समाज में अभाव सा प्रतीत होता है। लेखक ने इस कमी को दूर कर सिद्धान्तानुसार जैनधर्म की उदारता प्रगट की है। विद्वान् लेखक का यह प्रयास श्रेयस्कर है। आपकी इस कृति से हम प्रसन्न हैं।

(२) त्यागमूर्ति बाबा भागीरथजी वर्णी—

पुस्तक पढ़ी। मैं तो इतनाही कहता हूं कि इसका अनेक भाषाओं में अनुवाद करके लाखों की संख्या में प्रचार किया जाय। ताकि जैनधर्म के विषय में संकीर्ण भाव मिटकर उदार भावना प्रगट हो।

(३) धर्मरत्न प० दीपचन्दजी वर्णी—

बाबाजी की इस सम्मति से मैं भी पूर्ण सहमत हूं।

(४) त्यागी नीरगलालजी—

यह पुस्तक बहुत अच्छी है। ऐसी पुस्तकों से ही जैनधर्म का उद्धार हो सकता है। जैनों को इसे पढ़कर अमल करना चाहिये।

(५) न्यायकाव्यतीर्थ श्वे० मुनि श्री हिमांशु विजय जी तर्कालंकार—

जैन समाज में ऐसे निबंधों की आवश्यकता है। अनुदार पंडित और मुनि लोग इसे पढ़ेंगे तो उन्हें भी सन्तोष होगा। पुस्तक शास्त्र प्रमाण पूर्वक लिखी गई है।

(६) न्यायतीर्थ श्वे० मुनि श्री न्यायविजयजी महाराज—

लेखक का यह प्रयत्न योग्य और प्रशसनीय है। इसे और भी विस्तार से लिखकर जनधर्म की उदारता पर पड़ा हुआ परदा हटाने का प्रयत्न होना चाहिये।

(७) श्वे० मुनि श्री० तिलकविजयजी महाराज—

जैनधर्म की उदारता पुस्तक को पढ़ कर मालूम हुआ कि दिगम्बर आम्नाय के धर्म नेता कहलाने वाले पण्डितों की अपेक्षा प० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ ने जैनधर्म के वास्तविक स्वरूप को अधिक प्रमाण से समझा है। मेरी समझ में ऐसी पुस्तकों का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही समाज को मिथ्यात्व छूटने का अवसर मिलेगा।

(८) श्वे० मुनि श्री फूलचन्दजी धर्मोपदेष्टा—

मैं मानता हूं कि इस पुस्तक का प्रचार प्र[illegible] होना चाहिये। यदि यह पुस्तक [illegible] लिखी जाती तो लेखक को [illegible]

जितने भी प्रमाण है वे सब पुष्ट प्रमाण है । दिगम्बर जैन समाज का कर्तव्य है कि लेखकके विचारों को दूर दूर तक फैलावें । आप के एक बालक ने पुस्तक ही नहीं लिखी है बल्कि आपको उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिये बलवती सम्मति दी है । यदि हमारी समाज का कोई मुनि इस विषय की पुस्तक लिखता तो मैं उसके पैरों मे लोट जाता । परन्तु गुण ग्राहिता की दृष्टि से परमेष्ठी को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता ।

(९) स्थानकवासी मुनि श्री प० पृथ्वीचन्द्रजी महाराज—

जैनधर्म की उदारता कितना सुन्दर एव औचित्यपूर्ण नाम है ! जैनधर्म पर-धर्म के नाम पर लगे हुवे कलक को धो डालने का जो सामयिक कर्तव्य था वही इस पुस्तक मे किया गया है । इसम जो भी लिखा है वह शास्त्रमूलक है । यही इस पुस्तक की विशेषता है । इसी लिये प० परमेष्ठीदास जी विशेष धन्यवाद के पात्र है । उसमे यदि श्वे० प्रमाण भी लिये जाते तो इसका प्रचार क्षेत्र बढ जाता । (अबकी बार इसी सूचना को ध्यान म रख कर कुछ श्वे० प्रमाण भी रखे गये है ।) लेखक के विचारों से मै सहमत हूं । जैन समाज इस पुस्तक का हृदय से स्वागत करे और इस मार्ग का अनुसरण करके प्राचीन गौरव की रक्षा करे ।

(१०) स्याद्वादवारिधि जैन सिद्धान्तमहोदधि न्यायालङ्कार प० वशीधरजी जैन सिद्धान्त शास्त्री इन्दौर—

जैनधर्म की उदारता पढने से इन बातो पर अच्छा प्रकाश पडता है कि पहले जमाने मे जैनधर्म का किस तरह प्रसार था, शुद्धि का मार्ग कैसा प्रचलित था, तथा जाति और वर्ण किस बात पर अवलम्बित र

(११) विद्यावारिधि जैनदर्शन दिवाकर प० चम्पतरायजी जैन बार एट ला (लंडन)

यह पुस्तक बहुत ही सुन्दर है। इसमें जैनधर्म के असली स्वरूप को विद्वान लेखक ने बड़ी ही खूबी के साथ दर्शाया है। उदाहरण सब शास्त्रीय हैं। इनमें गैरशास्त्र की कोई गंजाइश नहीं है। ऐसी पुस्तकों से जैनधर्म का महत्व प्रगट होता है। इनकी कद्र होनी चाहिये।

(१२) प० जुगलकिशोरजी मुख्तार सरसावा—

पुस्तक अच्छी और उपयोगी है। यह जैनधर्म की उदारता के साथ लेखक के हृदय की उदारता को भी व्यक्त करती है। जो लोग अपनी हृदय संकीर्णता के कारण जैन धर्म को भी संकीर्ण बनाये हुये हैं वे इससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

(१३) व्याकरणाचार्य प० वंशीधरजी जैन न्यायतीर्थ बीना—

पुस्तक समयोपयोगी है। इसलिये समय को पहिचानने वालों के लिये उपयोगी होनी ही चाहिये। परन्तु शास्त्रीय प्रमाणों का बल पाकर यह पुस्तक स्थितिपालक दलको भी उपेक्ष्य नहीं हो सकती।

(१४) साहित्यरत्न प० सिद्धसेनजी गोयलीय—

पुस्तक बहुत अच्छी है। प्रत्येक भाषा में अनुवाद करके इसका लाखों की संख्या में मुफ्त प्रचार करना चाहिये।

(१५) प० छोटेलालजी जैन सुपरि० दि० जैन बोर्डिङ्ग अहमदाबाद—

लेखकने यह पुस्तक लिखकर समाजका बड़ा उपकार किया है। प्रत्येक भाषा में इसका अनुवाद करके वितरण की जाय तो निःसंदेह

(२०) ला० लक्ष्मीचन्दजी जैन एम० ए० देहली—

पं० परमेष्ठीदास जी ने जैनधर्म की उदारता लिखकर अज्ञान या गहरी नींद में सोती हुई जैन समाज को जल पूर्वक झंझोल डालने का साहसिक प्रयत्न किया है। जैनधर्म की उदारता समझने के लिये उदारमन शुद्ध और मस्तिष्क परिष्कृत होना चाहिये। लेखक के पास यह सब है। वे इस युगके जागृत युवक हैं। उन्होंने जैनधर्म के सुन्दर रूप को देखा है। और समाज को बताया है। निःसन्देह यह ट्रेक्ट एक चिनगारी है।

(२१) प्रोफेसर बी० एम० शाह एम० ए० सूरत—

I have read Pandit Parmeshthi Das ji's Jain Dharm Ki Udarta, with great pleasure and satisfaction. The learned writer has ably pointed out the noble principles of Jainism which clearly show that it deserves to be called the Universal Religion. The Jain Scriptures are extremely reasonable and just in laying down rules for the mutual dealing of human beings.

There is no distinction of a family high or low in the observance of religion. Men and women Kshatri, Brahman, Vaish & Shudras, all have equal rights for religious practice and liberation. There is nothing like touchability or untouchability in Jainism. Pandit

Parmeshtidasji has proved these things in his small book with many illustrations and quotations from the Jain Granthas

The book will do good

Professor B M SHAH, M A
Vice Principal Surat College

मैंने पंडित परमेष्ठीदासजी की धर्म पुस्तक जैनधर्म की उदारता को निहायत खुशी और इतमिनान के साथ पढ़ा काबिल रचयिता ने जैनधर्म के शरीफाना सिद्धांतों का निहायत काबलियत के साथ उल्लेख किया है जिससे साफ तौर पर जाहिर होता है कि जैनधर्म विश्वव्यापी धर्म बनने का हकदार है। मनुष्य मात्र के जीवन के जो सिद्धांत जैन शास्त्रों में रखे गये हैं वह निहायत ही मुदल्लिल (सप्रमाण) और मुन्सफाना है किसी भी परिवार को कोई खास इम्तियाज नहीं दिया गया है सत्री ब्राह्मण वैश्य और शूद्र सब के अख्तियारात बराबर हैं और धर्म कार्य में सबका समान हक है। जैनियों में अछूत का कोई प्रश्न नहीं रखा गया है।

पंडितजी ने इन सारी बातों को इस छोटी सी पुस्तक में निहायत साफ तौर, पर और प्रमाण के साथ साबित किया है और बहुत से उदाहरण देकर समझाया है इस पुस्तक के छपने से जैन धर्म पर एक नई रोशनी पड़ी है और जनता को बहुत कुछ लाभ पहुँचेगा।

इसके अतिरिक्त श्री० रूपचन्दजी गार्गीय पानीपत, जैन जाति भूषण ला० ज्वालाप्रसादजी रईस महेन्द्रगढ़, श्री० गजमलजी जैन

परैया भोपाल, हकीम प० कल्याणदासजी जैन झांसी, प० सुन्दरलालजी जैन वैद्यरत्न, प० शिखरचन्द्रजी जैन वैद्य फर्रुखनगर, प० घनश्यामलालजी जैन शास्त्री चहरामघाट, प० रघुनाथजी जैन न्यायतीर्थ रोहतक आदि अनेक विद्वानों ने अपनी शुभ सम्मतियां प्रदान की हैं जिन्हें विस्तार भय से यहां प्रगट नहीं किया है।

तथा जैन मित्र, दिगम्बर जैन, सुदर्शन, जैन ज्योति, प्रगति जिन विजय, स्वराज्य, प्रताप, धर्मवीर, नवयुग, बम्बई समाचार, जैन, लोकवाणी आदि अनेक पत्रों ने भी मुक्त कण्ठ से जैनधर्म की उदारता की प्रशंसा की है। आशा है कि जैन समाज इस द्वितीयावृत्ति को प्रथमावृत्ति की अपेक्षा और भी अधिक प्रेम से देखेगी और जैनधर्म की उदारता को अपने आचरण में उतारने का प्रयत्न करेगी। —प्रकाशक

पुस्तक मिलने पते—

१—ला० जौहरीमल जी जैन सर्राफ बड़ा दरीबा, देहली।
२—दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत. (हिन्दी और गुजराती)
३—जैन साहित्य पुस्तक कार्यालय, हीरा बाग-बम्बई।
४—श्रीधर दादा पावन-सांगली (मराठी)।

गणपत प्रेस, बाग दिवार देहली में छपा।